पुस्तक मिलने का ठिकानाः—

१—जैनार्या श्रीमती पुण्यश्रीजी स्मारक
ग्रन्थमाला

कुन्दीगर भैरवजी का रास्ता, जैन धर्मशाला
जयपुर सिटी, (राजपूताना)

२—श्रीमान् सेठ सुगनचंदजी
सौभाग्यचंदजी जौहरी.

जौहरी बाज़ार. जयपुर सिटी।

सूचना—यह पुस्तक मंगवाने वाले महाशय रजिष्टर पोष्ट खर्च के लिये छह आने की पोष्ट टिकिट भेजने की कृपा करें।

मुद्रक—जवाहरलाल लोढा, जैनानन्द प्रेस, मोतीकटरा आगरा।
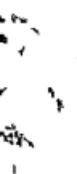
* समर्पण *

श्रीमती परमपूज्यपादा प्रातःस्मरणीया विद्वद्वर्या सुप्रसिद्धजैनधर्मोपदेशिका प्रवर्त्तिनी गुरुणीजी महाराज श्री श्री श्री १००८ श्री श्री पुण्यश्रीजी महाराज की परम पवित्र सेवा में।

आप अनेक जगह विचर २ कर मनुष्यों के कल्याण के लिये सर्वदा धर्मोपदेश दिया करती थीं। मेरे जैसी सैंकड़ों अबोध बालिकाओं को अपने सद्बोध वचनामृतों से सिंचन कर सन्मार्ग में लाये। इतना ही नहीं, किन्तु सद्ज्ञान दर्शन और चारित्र देकर इस पतित जीवन से उद्धार किया। इन महान् उपकारों से ऋणी होकर सविनय भक्तिपूर्वक यह लघुग्रन्थ आपके करकमल में समर्पित करती हूँ।

भवच्चरणचञ्चरिका—

विनयश्री

श्रीमान् सेठ इन्द्रचन्द जी झरगड़ जौहरी का

संक्षिप्त जीवन परिचय।
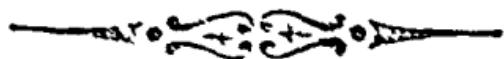
आप जयपुर में एक सुप्रसिद्ध जौहरी हैं। आपका जन्म विक्रम संवत् १९३५ भाद्रपद शुक्ला ११ शनिवार के दिन श्रीमाल ज्ञातीय श्रीमान् सेठ सुगनचन्द जी सौभाग्य चन्द जी झरगड़ के घर हुआ था। आप बाल्यावस्था से ही बड़े विनयवान्, माता पिता की आज्ञानुसार सर्वदा बर्त्ताव करने वाले, उदारहृदय वाले, हंसमुखे स्वभाव वाले और गम्भीर थे। माता पिता ने आपका शुभ विवाह ११ वर्ष की छोटी अवस्था में ही ओसवाल ज्ञातीय श्रीमान् सेठ नथमल जी बांठिया जयपुर वाले की श्रीमती सौभाग्यवती सुशीला पुत्री के साथ कर दिया था। बाद आपने व्यावहारिक शिक्षा अच्छी तरह प्राप्त करके जौहरी का व्यापार करने लगे। कुछ समय में अपनी कला-कौशलता से लाखों रुपये उपार्जित किये। इतना ही नहीं परन्तु आपके व्यापार की इतनी प्रसिद्धि हुई कि यूरोप आदि दूर २ के प्रदेशों में आपका व्यापार चलने लगा। देहली दरबार में सम्राट् पञ्चम ज्यॉर्ज के राज्याभिषेक के समय

विदित हो कि इस असार संसारसागर में गिरते हुए मनुष्यों के जीवन का उद्धार करने के लिये प्राचीन जैनाचार्यों ने संस्कृत प्राकृत एवं देशी भाषा में अनेक औपदेशिक ग्रन्थों की रचना की है। उनमें से कितनेक अच्छे २ शिक्षाप्रद ग्रन्थ गुजराती भाषा में अनुवाद रूप से प्रकट हो चुके हैं। परन्तु ऐसे ग्रन्थों की हिन्दी भाषा में बहुत न्यूनता देखने में आती है। इस त्रुटि को पूर्ण करने के लिये एवं समस्त जनों के लाभ के लिये जिस देशना से प्रथम जिनेश्वर श्री आदिनाथ स्वामी ने अपने ९८ कुमारों को प्रतिबोध किया था, ऐसी श्री युगादिजिन देशना का हिन्दी अनुवाद रूप आपके सामने रखती हूं। और आशा करती हूं कि इसको अच्छी तरह मन लगा कर पढ़ें और मेरे परिश्रम को सफल करें।

प्रस्तुतः ग्रन्थ पन्द्रहवीं शताब्दि में सहस्रावधानी श्री मुनिसुन्दरसूरि के शिष्य श्री सोममण्डन गणि ने अन्दाज

२४०० श्लोक प्रमाण संस्कृत पद्यों में रचा है। इसको शान्ति से मनन पूर्वक बाँचने से मालूम होगा कि क्रोध, मान, माया, लोभ और मोह आदि कषायों से तथा लक्ष्मी, स्त्री और राजऋद्धि आदि से कैसे २ परिणाम होते हैं। और इन को छोड़ने से आत्मोन्नति कैसे हो सकती है, इत्यादि अनेक दृष्टान्त पूर्वक समझाया गया है। इस के पाँच उल्लास हैं।

प्रथम उल्लास में भरत चक्रवर्त्ती ने अपने छोटे २ भाइयों को आज्ञा में रहने को कहा जिससे वे सब उद्विग्न होकर पिता आदिनाथ प्रभु के पास गये। वहाँ उन को प्रतिबोध देने के लिये प्रभु ने प्रथम क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार कषायों से छुड़ाने के लिये एक कषाय वाले कुटुम्ब का सविस्तर दृष्टान्त दिया। अन्त में प्रभु के पुत्र ने प्रश्न किया कि ऐसे कषाय वाले होने पर भी स्वल्प समय में कैसे मुक्त हुए ? इस प्रश्न के उत्तर में एक भव में अनेक भव करने वाली कामलक्ष्मी का एक सरस दृष्टान्त कहा गया है।

दूसरे उल्लास में मोह का त्याग बतलाने के लिये अभव्य, दूरभव्य, भव्य, आसनसिद्ध और तद्भवसिद्ध इन पाँच कुलपुत्रों का दृष्टान्त बहुत सुन्दर रीति से घटाया है,

तथा इन पाँच प्रकार के जीवों की प्रकृति भी बहुत स्पष्ट करके बतलाई है। उसके बाद अतिमोह के कारण दुःखी और निर्मोह के कारण सुखी होने पर सरस्वती, देवदिन्न और प्रियंगुसेठ का दृष्टान्त है। अन्त में कपट युक्त धर्मोप-देश करने से भी प्राणी दुःख पाता है, इस विषय पर धनश्री का दृष्टान्त अधिक विस्तार पूर्वक है।

तीसरे उल्लास में प्रथम लक्ष्मी का त्याग बतलाकर, उसको अत्यन्त प्रिय मानने वाले रत्नाकर सेठ का दृष्टान्त दिया गया है। उसके बाद लक्ष्मी का तिरस्कार करने वाले शुचीन्द्र, लक्ष्मी को पूजने वाले श्रीदेव, तिजूरी में बन्द कर रखने वाले संचयशील और उदारता से दान भोग आदि में खर्चने वाले भोगदेव, इनके दृष्टान्त बहुत मनन करने योग्य हैं।

चतुर्थ उल्लास में इन्द्रियों के विषयों की चपलता बतला-कर तथा उनको त्याग करने का उपदेश देकर मुख्य स्पर्शे-न्द्रिय के विषय के लोलुपी और दुःखी सुन्दर और सुन्दरी का बहुत चमत्कारक उदाहरण दिया है। उसके बाद स्त्री की अति चपलता के ऊपर पातालसुन्दरी का मनोहर दृष्टान्त दिया है। इसके अनन्तर अतिमोह वाला बहु-धान्य और इरखी का दृष्टान्त दिया गया है। इनके मान्य

ग्रहण किया हुआ चारित्र, उत्पन्न हुआ मान, जिससे वहीं कायोत्सर्ग में स्थित रहना. बाद ब्राह्मी सुन्दरी के वचनों से प्रतिबोध पाकर, भगवान् की पर्षदा में जाने के लिये चरण उठाते ही उत्पन्न हुआ केवलज्ञान, भगवन्त के साथ १०८ महापुरुषों का समकाल निर्वाण, भरत चक्री को आरीसा भवन में उत्पन्न हुआ केवलज्ञान, बाद उसका और ब्राह्मी सुन्दरी का मोक्षगमन इत्यादि वर्णन के बाद अन्त में ग्रन्थकार प्रशस्ति देकर ग्रन्थ समाप्त किया गया है।

मैंने यह पुस्तक कई दिन पहले लिखी थी, किन्तु मेरा यह पहला प्रथम ही कार्य होने से भाषा में लालित्य न आ सका, एवं कई एक भाषा सम्बन्धी दोष भी रहे होंगे। इसलिये प्रकाशित करने में संकोच हो रहा था। परन्तु उत्साह देने वाले सज्जनों की प्रेरणा से प्रकाश में लाई गई। इसमें भाषा सम्बन्धी या प्रूफ सम्बन्धी त्रुटियाँ रह गई हों उनको पाठकगण सुधार कर पढ़ें और हमें उत्साहित करें कि आगे इसके सदृश दूसरे ग्रन्थ लिखने में समर्थ होऊं।

मेरी आत्म उपकारी श्रीमती पूज्यपाद विदुषी गुरुणी जी महाराज श्री श्री १०८ श्री [illegible] सुन्दर श्रीजी

विषयानुक्रम ।

—०—

✻ ॐ श्री वीतरागाय नमः ✻

श्रीसोममण्डनगणि विरचित

युगादिदेशना—भाषान्तर।

❀ प्रथम उल्लास ❀

तीसरे आरे के अन्त में युगलियों की धार्मिक और व्यावहारिक मर्यादा को व्यवस्थित करने वाले श्रीमान् आदिनाथ प्रभु भव्यजनों को कल्याण दें।

मैं (सोममण्डनगणि) अपनी और दूसरों की पुण्य प्राप्ति के लिये तथा पापों को नाश करने के लिये जिस देशना से अपने पुत्रों को प्रतिबोधित किये थे ऐसी श्री ऋषभदेव स्वामी की धर्मदेशना को कुछ कहता हूँ कि जिसके श्रवणमात्र से प्राणियों के करोड़ों जन्मों में किये हुए पाप नाश हो जाते हैं।

अधिक क्या दे सकेगा ? आयुष्य के अन्त समय मृत्यु को क्या रोक सकेगा ? देह को शोषण करने वाली जरा-राक्षसी (वृद्धावस्था) का वह निग्रह (दमन) करेगा ? बारम्बार दुःख देने वाले व्याधिरूप शिकारियों का वह नाश कर सकेगा ? या उत्तरोत्तर बढ़ती हुई तृष्णा को क्या वह चूर्ण कर सकेगा ? इस प्रकार कुछ भी सेवा का फल देने में वह असमर्थ है तो मनुष्यपन सबको बराबर है इसलिये क्यों किसी की कोई सेवा करे ? जिसने जिसको राज्य दिया है वह उसको सेवने योग्य है ऐसा प्रसिद्ध व्यवहार है, किन्तु हम को पिता ने राज्य दिया है तो हम भरत की सेवा क्यों करें ? छः खण्ड भरतक्षेत्र के समस्त राजाओं की विजय से उसका मन उन्मत्त हो गया मालूम होता है, जिससे अपने को भी वह सेवक बनाना चाहता है। वह बड़ा भाई इतना भी नहीं जानता कि हम सब भी एक पिता के ही पुत्र हैं। फिर भी उसको इतनी खबर नहीं कि सब बिल में गोह नहीं होतीं किन्तु कहीं बड़े फण वाले सांप भी होते हैं। इतने पर भी 'मैं इनका स्वामी और ये मेरे सेवक' इस विचार से वह यदि पीछे न हटेगा तो हम सब रण संग्राम में इकट्ठे होकर लीला मात्र में ही उसको जीत करके छःखण्ड के विजय से प्राप्त किये हुए राज्य को ग्रहण करेंगे। किन्तु

कलुपित मनुष्य गुणवान् हो तो भी प्रतिष्ठापात्र नहीं होता। जैसे जंगल में लगा हुआ दावानल वृक्षों को तुरन्त जला देता है, वैसे कषाय के वशीभूत मनुष्य अपने पूर्व जन्म में प्राप्त किये हुए तप को तत्काल क्षय कर देता है। जैसे कृष्ण वर्ण वाले वस्त्र में लाल रंग नहीं लगता, वैसे कषाय से कलुपित हुए मनुष्यों के चित्त में धर्म को स्थान नहीं मिलता। जैसे चांडाल को स्पर्श करने वाला सुवर्ण जल से भी शुद्ध नहीं हो सकता, वैसे कषाय युक्त प्राणी तप से भी पवित्र नही हो सकता। एक दिन का ज्वर (बुखार) तो शरीर के छः मास का तेज हर लेता है, किन्तु क्रोध तो एक क्षण वार में क्रोड़ पूर्व पर्यंत इकट्ठे किये हुए तप को नष्ट कर देता है। सन्निपातिक ज्वर की तरह क्रोध से व्याकुल हुआ मनुष्य कृत्याकृत्य का विवेक भूल जाता है और विद्वान् होने पर भी जड़ जैसा हो जाता है। बहुत उत्कृष्ट तप से देवता भी जिनकी सेवा करते थे ऐसे करट और उत्करट नाम के मुनि क्रोध के उदय से नरकगामी हुए। विवेक रूप नेत्र का नाश हो जाने से आत्मा को मान रूप अन्धकार नरक में गिरा देता है। प्राणियों को मोक्ष तक ले जाने में समर्थ ऐसे परमात्मा महावीर को भी कुल गोत्र के अभिमान से नीच गोत्र में अवतार लेना पड़ा, कहा है कि—

होगी ? इन चार कषायों को त्याग करने वाला मनुष्य सचमुच सब मनुष्यों में प्रतिष्ठापात्र होता है इतना ही नहीं परन्तु देवताओं में भी इन्द्र रूप होता है।

इस प्रकार भगवान् के मुख से कषायों का वर्णन सुन कर कुणाल नाम के पुत्र ने प्रभु को पूछा—

"हे तात! हमारे अन्तःकरण इन चार कषायों से कलुषित हैं, तो हे भगवन्! हम लोगों को धर्म की प्राप्ति किस प्रकार होगी ? 'भरत हमको सेवकों की तरह क्यों हुक्म करता है ?" इस हेतु से क्रोध से आकुल हुए हम सब बड़े भाई भरत को मारने की इच्छा करते हैं, (यह बहुत खेद की बात है)। ऐश्वर्य और भुजा के अतुल बल के अभिमान से हम मदोन्मत्त हुए हैं, जिससे हे तात! हमारी ग्रीवाएं बड़े भाई को भी नमन नहीं करना चाहतीं। छः खण्ड पृथ्वी को विजय करने से उन्मत्त हुए भरत को माया रचना से अर्थात् छल कपट से जीतने की हम इच्छा करते हैं और निरन्तर अनेक प्रकार की कपट रचना का विचार भी करते हैं। हे तात! तीव्र लोभ के उदय ने छः खण्ड पृथ्वी के स्वामी ऐसे बड़े भाई को भी शीघ्र ही जीत कर उस की राज्यलक्ष्मी को स्वाधीन करने की हम आशा रखते हैं। हे नाथ! इन चारों ही तीव्र कषायों ने हमारे

शिखा नाम की रूपवती उसकी स्त्री थी। प्रसंग या अप्रसंग में कोप को प्रकट करके वे दोनों पति पत्नी स्नेहालाप या हास्यादि भी परस्पर कभी करते नहीं थे। अपने तीन पुत्रों के विवाह यौवनावस्था में क्रमशः शिला, निकृति और संचया नाम की तीन वणिक् पुत्रियों के साथ हुआ था, प्रबल उदय वाले क्रोधादिक चार कषाय भी मानों विभक्त होकर रहे हों वैसे चारों ही दंपती (पति पत्नी) के अन्तःकरण में प्रत्येक ने स्थान ले रक्खा था।

रुद्रदेव और अग्निशिखा क्रोध से अपना हृदय देग्ध करके पुत्रादिक के प्रिय कभी भी शीतलता को पाते नहीं थे, अपनी हठ वाले हुंगर (प्रथमपुत्र) भी जैसे नम्रता को छोड़ दी हो और कठिनता को धारण करली हो वैसे ही माननीय पुरुषों को भी अहंकार के दोष से कभी नमता नहीं था। माया (कपट) से अपने संबंधियों को ठगने की बुद्धि वाले हंस (दूसरा पुत्र) और निद्रा में भी [illegible] विश्वासपात्र नहीं होते थे। समुद्र की तरह दुःख से पूर्ण होने लायक संचयासक्त सागर (तीसरा पुत्र) भी समस्त जगत् के धन को लोभ से अपने स्वाधीन करने को चाहता था। इस प्रकार ये सब कषायों के उदय से, जैसे [illegible] व्याधियों से शरीर जर्जर हो जाता है, वैसे यह कुटुम्ब भी जर्जरित होने लगा।

एक हज़ार सोना मोहर देता हूं. उसको एकान्त में कहीं छुपा कर रखना और हे प्रिये ! यह बात तेरी पुत्र वधुओं को भी नहीं कहनी" इस बात को निकृति ने दीवाल की ओर रह कर सुनली ।

एक दिन फिर सेठ ने अपनी स्त्री को कहा—"हे वल्लभे ! यह दो हज़ार सोना मोहर मैं भूमि में गाड़ देता हूं उसको देख. कभी विशूचिका. अग्नि. शूल. पाणी. सर्प या विष आदि से मेरा अकस्मात् मरण हो जाय तो हे प्रिये ! परलोकवासी हुआ ऐसा मेरे पीछे मेरे नाम से इनका सद्व्यय करके मुझे पुण्य रूप भाता देना । हे कान्ते ! मेरे पुत्रों का तिरस्कार करके यह नहीं कहने लायक भी विश्वास से तुझे कहा है । कारण कि पति के सुख दुःख में स्त्री समभागिनी होती है ।" इस प्रकार रुद्रदेव ने अपनी स्त्री को एकान्त में कहा तो भी मायावी पुत्रवधू ने दीवाल की ओर रह कर सब सुन लिया ।

एक समय लुब्ध ऐसी निकृति और वंचना ने विचार किया कि—'सासु को किसी प्रकार खुश करके ससुर का गुप्त रूप से दिया हुआ धन अपन ले लेवें तो अच्छा ।' इस प्रकार आपस में सलाह करके और कपट से आंखों में आँसू ला करके वे दोनों सासु को कहने लगी कि—'हे मात ! अभिमान से तुम्हारी बड़ी बहू निकृति [illegible]

र्वकृत पुण्य से सेवा में तत्पर, कुलीन और शील संपन्न
सी ये पुत्रवधुएँ मुझे मिली हैं। ऐसे भी कहा है कि
स्त्रियों के सद्भाग्य से पुत्र के पीछे उत्पन्न हुई पुत्री हृदय
और नेत्र को आनन्द देने वाली तथा विश्वास की पात्र
होती है। ऐसी पुत्री तो मुझे प्राप्त न हुई परन्तु दैवयोग
से वधू रूप में यह निकृति और संचया मुझे पुत्री समान
प्राप्त हुई हैं। यदि ये दोनों पुत्रवधू जीवन पर्यन्त मेरी
सेवा करेंगी तो पीछे आशा की विश्रान्ति के लिये रखे
हुए धन की मुझे क्या परवाह है? ये दोनो बहू मेरी बहुत
भक्ति करती है इसलिये इनसे कुछ भी छिपा नहीं रखना
चाहिये। अब मेरा गुप्तधन का स्थान है वह उन को बतला
दूँ। कभी अकस्मात् मेरा मरण हो जाय तो भी उनकी
भक्ति के बदले उनको धन अर्पण करने में मैं ऋणमुक्त
होऊँगी। सब कार्य में भद्रा (विष्टि तिथि) की तरह बड़ी
शिला बहू तो बहुत गर्विष्ठ है, इसलिये मैंने उसका प्रथम
से ही त्याग किया है तो उसको धन क्यों देना?" इस
प्रकार विचार करके अग्निशिखा ने गुप्त धन का स्थान
दोनों छोटी बहुओं को बतला दिया और कहा कि—"मैं
जब मरण पा जाऊँ तब यह बाँट लेना" बहुओं ने कहा
कि—'हे मात! आप बहुत काल तक जीवित रहो, हमको
धन की क्या आवश्यकता है? आप तो हमारे धन हो

वेकृत पुण्य से सेवा में तत्पर, कुलीन और शील संपन्न सी ये पुत्रवधुएँ मुझे मिली हैं। ऐसे भी कहा है कि स्त्रयों के सद्भाग्य से पुत्र के पीछे उत्पन्न हुई पुत्री हृदय और नेत्र को आनन्द देने वाली तथा विश्वास की पात्र होती है। ऐसी पुत्री तो मुझे प्राप्त न हुई परन्तु दैवयोग से वधू रूप में यह निकृति और संचया मुझे पुत्री समान प्राप्त हुई हैं। यदि ये दोनों पुत्रवधू जीवन पर्यन्त मेरी सेवा करेंगी तो पीछे आशा की विश्रान्ति के लिये रखे हुए धन की मुझे क्या परवाह है ? ये दोनों बहू मेरी बहुत भक्ति करती है इसलिये इनसे कुछ भी छिपा नहीं रखना चाहिये। अब मेरा गुप्तधन का स्थान है वह उन को बतला दूँ ! कभी अकस्मात् मेरा मरण हो जाय तो भी उनकी भक्ति के बदले उनको धन अर्पण करने में मै ऋणमुक्त होऊँगी। सब कार्य में भद्रा (विष्टि तिथि) को तरह बड़ी शिला बहू तो बहुत गर्विष्ठ है, इसलिये मैंने उसका प्रथम से ही त्याग किया है तो उसको धन क्यों देना !" इस प्रकार विचार करके अग्निशिखा ने गुप्त धन का स्थान दोनों छोटी बहुओं को बतला दिया और कहा कि—"मैं जब मरण पा जाऊँ तब यह बाँट लेना" बहुओं ने कहा कि—"हे मात ! आप बहुत काल तक जीवित रहो. हमको धन की क्या आवश्यकता है ! आप तो हमारे धन हो

लगीं—"हे मात। यदि हम उस धन की बात जानती हों तो देव और सद्गुरु के चरणों को स्पर्श करें, या तो सब तीर्थ से अधिक ऐसे आपके चरणों को छुएँ, हे मात! रहा कलंक में भी कुलवान की शुद्धि सौगन्द से ही होती है, कारण कि चाहे जैसा बड़ा संकट शिर पर आ जाय और अन्त में प्राण का नाश भी हो जाय तो भी कुलीन स्त्रियाँ सौगन्द को मिथ्या नहीं करती अर्थात् झूठा सौगन्द नहीं खाती। इतने सौगन्द खाते हुए भी हमारे पर विश्वास न आता हो तो आपके कहे अनुसार शुद्धि के लिये दिव्य (शपथ) करने को तैयार हैं। हे अंबा! बालावस्था से हमारे माता पिता ने आपके गोद में हमको रखी है इसलिये हमारे माता पिता गुरु बन्धु और सासू भी आप ही हैं। इतने पर भी निर्दोष ऐसी हम पर आप दोष देंगी तो बड़ी खेद की बात है कि जिसका हमने शरण लिया उससे ही हमको भय प्राप्त हुआ ऐसा मालूम होगा" बहुओं की इस प्रकार की वचन चातुरी से 'मेरा धन इन्होंने अवश्य लिया है' ऐसा निश्चय करके उन पर मन में क्रोध लाकर अग्नि-शिखा ने अभी तो मौन धारण किया।

इस तरफ रुद्रदेव ने अपना अंतःकाल समय में अच्छे ठिकाने खर्च करने के लिये अपनी स्त्री के समक्ष एकान्त में जो धन पृथ्वी में गाड़ा था, उस बात को वहुओं ने

ी सेवा करने वाले पुत्र को ही कह सकते हैं। कुडंग और
ागर माता पिता की वहुत भक्ति करने वाले हैं, इसलिये
ंने जो धन भूमि में रखा है, वह उनको वतलाऊं, जिससे
उस धन का भविष्य में सन्मार्ग में खर्च होगा और मैं भी
उनका ऋणी न होऊंगा'। इस प्रकार विचार करके उसने
अपने दोनों पुत्रों को भूमि में गढ़ा हुआ धन वतला कर
कहने लगा—'हे वत्सो! मेरे मरण के वाद ये दो
हज़ार सोना मोहर जितना यह धन तुम ले लेना। डूंगर तो
जन्म से ही अविनीत होने से वह मुझको प्रिय नहीं है
इसलिये यह धन तुमको ही देता हूं, इस धन में से उसको
कुछ भी भाग नहीं देना'। पुत्र कहने लगे—'हे तात!
आप वहुत काल तक आनन्द में रहे, हमारे उस धन का
क्या प्रयोजन है? कारण कि आप हमारे पर छत्र की तरह
रह कर आपत्ति रूप ताप को दूर करते रहें हम ऐसी इच्छा
करते हैं'। कहा है कि—

'यत्र तत्रापि सुलभं धनं लाभोदये नृणाम्।
हितान्वेषी पुनस्तातः पत्तनेऽपि न लभ्यते ॥'

'जब लाभ का उदय हो तब धन तो मनुष्यों को
जहां तहां से भी मिलना सुलभ हो जाता है, परन्तु पुत्र

परं विश्वास नहीं है तो दूस .ा को कैसे हो सके ? लोक में भी कहा है कि 'जो अ .ने घर में हलका पड़ता है वह बाहर तो पवन से भी अधिक हलका पड़ता है।' अपने धन की स्थिति जान .ने की प्रबल इच्छा थी तो भी कुटिलता युक्त चातुर्यता से और युक्ति प्रयुक्ति से पुत्रों ने बोलने को तैयार होते ही उसको रोक दिया।

उसके . बाद वह इष्टिका पाक की तरह क्रोध से अंतःकरण में . अतिशय जलता हुआ किसी के साथ भी स्नेह से ब .त नहीं करता था। इस प्रकार कलुषित मन वाले से . का कितनाक काल व्यतीत हुआ।

एक दिन सेठानी ने अपना धन गुम होने की बात सेठ को कही। यह सुन कर सेठ बहुत दुःखी हुआ और मन में क्रोध लाकर स्त्री को कहने लगा—'हे पापिनि! बहुओं को यह बात क्यों कही?' सेठ का क्रोध से भरे हुए भाषण को सुन कर अग्निशिखा भी क्रोधपूर्वक बोली—'मूर्ख! पापी तो तू आप ही है कि अपने पुत्रों को अपना गुप्त धन की बात कह कर सब गमाया।' जैसे अग्नि में घी होमने से वह अधिक प्रज्वलित होती है वैसे सेठानी के जलते हुए वाक्यों से रुद्रदेव नख से चोटी तक जल उठा। .ह अपना उभरना खाली करने के लिये बोला—'हे

ऐसे विस्मय पाते हुए वहुत से लोग वहाँ देखने के लिये इकट्ठे हो गये। इनमें से कितने ही लोग आश्चर्य करने लगे, कितने ही हँसने लगे, कितने ही मध्यस्थ रहे और कितने ही वैराग्य पा गये।

उस समय कोई ज्ञानवान् मुनि गौचरी के लिये घूमते घूमते सेठ के पुण्योदय से वहाँ भिक्षा लेने आये। अपने ज्ञान से श्रेष्ठि-कुटुम्ब का वृत्तान्त यथार्थ जानते हुए मुनि 'अहा! यह कषाय का परिणाम है' ऐसा कह कर वहाँ से तुरत ही वाहर निकले। सेठ उसके वचन को सुनकर मुनि के समीप जाकर अपने कलह में व्यग्र होते हुए भी उक्त वचन का भावार्थ पूछने लगा। मुनि कहने लगा— "हे भद्र! सुन, यह तेरे घर में अति विषम ऐसा कषाय-रूप वृक्ष का पुष्प खिला हुआ है। वह सुज्ञ मनुष्यों को वैराग्य का कारण और मूर्ख जनों को हास्य का कारण हो गया है। ये सर्प और नकुल हैं वे तेरे कुडङ्ग और सागर नाम के पुत्र हैं, यह नागिन तेरी स्त्री है और यह नकुली वह निकृति है, तथा यह कुत्ती वह संचया है। निश्चय से इन कषायों ने तेरे कुटुम्ब को नटपेटक (नटों) की तरह अनेक प्रकार के रूप दिखलाये हैं।" इस प्रकार सेठ के आगे मुनि ने जब पूर्वभव का वृत्तान्त कहा, तब उस को सुनकर सर्पादि पाँचों ही जीवों को जाति स्मरण ज्ञान हो
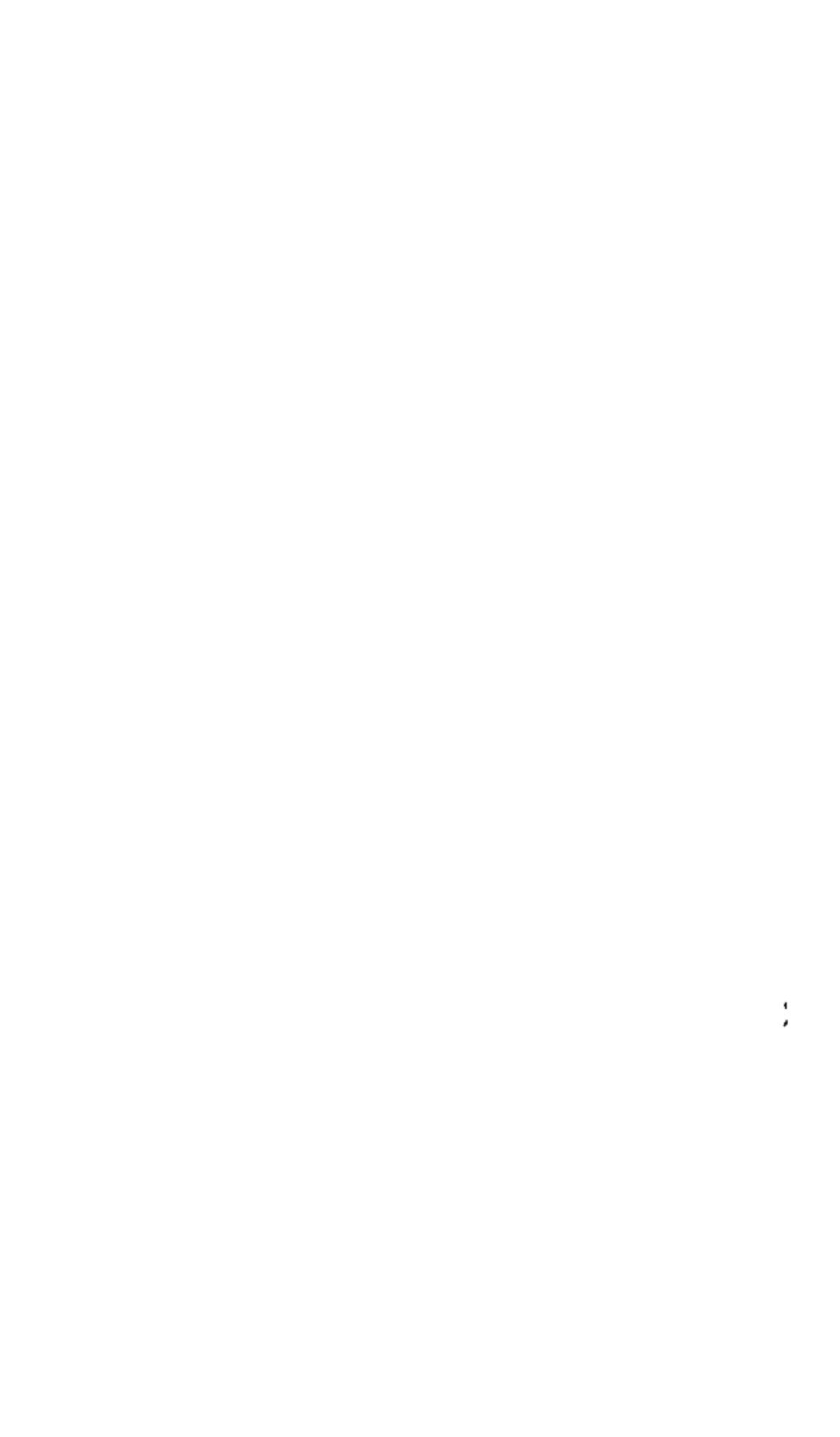
अर्थ रूप पौरुषी को भी वे यथार्थ पालन नहीं करते थे और तीन गुप्ति और पाँच समिति का भी वे अच्छी तरह आराधन करते नहीं थे। इस प्रकार साधुओ की सब प्रकार की धर्मकरणी में वे प्रमादी हो गये।

एक दिन अग्निशिखा का जीव जो देव हुआ है उसने अपने पूर्वभव के पति और पुत्र को देखा, उन को प्रतिबोध देने के लिये उसने अग्निशिखा का रूप किया और रात्रि के समय वहाँ आकर उनके आगे इधर उधर घूमने लगी। अग्निशिखा को देखकर रुद्रदेव बहुत आश्चर्य पाकर कहने लगा—'हे भद्रे ! तू तो मर गई थी तो अब जीवित कैसे हुई ? देवताओं की उपासना से, मन्त्रों से या सेवन किये हुए रसौषधों से भी मरे हुए मनुष्य कभी जीवित नहीं होते, ऐसी सर्वज्ञ भगवान् की वाणी है।' तब अग्निशिखा के रूप को धारण करने वाला देव कहने लगा—'उस नागिन के भव में मैंने अनशन किया था। जिससे मैं देव हुई हूं और इस समय यह रूप धारण करके यहाँ आई हूं।' रुद्रदेव कहने लगा—'हे मुग्ध ! अब तो तू अविरति है तो सर्व विरति ऐसे हमको तू वन्दना क्यों नहीं करता ?' देव कहने लगा—'आपको अभी सर्वविरति कहाँ है ? कषायों का परिणाम बहुत अनिष्ट है, ऐसा आप

कर, गुरु ने उनको आलोचना देकर पूर्व की तरह वापिस गच्छ में लिये।

पीछे वे दोनों मुनि आठ काल आदि के अतिचार को निरन्तर त्याग करके अप्रमादपन से अच्छे प्रकार स्वाध्याय ध्यान करने लगे। सम्यक्त्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय और मिथ्यात्वमोहनीय ये तीन प्रकार के कर्म समूह का क्षय हो जाने से वे आठ प्रकार के दर्शनाचार को अच्छी तरह पालन करने लगे। दुष्ट चारित्रावर्णीय कर्म के क्षयोपशम से वे शुभ आशय वाले होकर निरतिचार चारित्र पालने लगे। इहलोक और परलोक सम्बन्धी फल को नहीं चाहते हुए छठ अट्ठमादि दुष्कर तप वे करने लगे। मुक्ति के साधन के हेतु भूत ऐसे श्री जिनेश्वर भगवान् के कहे हुए योगों के विषय में अपना मन, वचन और काय के बल को वे यथा विधि लगाने लगे। इस प्रकार आप अपने अभिग्रह को सावधान होकर पालते हुए शुभ ध्यान रूप अग्नि से उनके बहुत कर्मरूप ईंधन जल गये, जिस से जीव के वीर्य विशेष के अतिशय सामर्थ्य से और कर्म के परिणाम की विचित्रता से मुक्तिमार्ग को साधने में तत्पर हुए ऐसे उनको कितनेक दिनों में घातिकर्मों के क्षय हो जाने से केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ।"

भी तप रूप अग्नि से भस्म हो जाते हैं। कहा है कि—"बाह्य और अभ्यन्तर तप रूप अग्नि प्रज्वलित हो जाने पर दुःख से दूर कर सके ऐसे कर्मों को भी संयमी पुरुष एक क्षणवार में क्षय कर देता है। कर्म के वशीभूत होकर कोई प्राणी बड़े भारी पापकर्म करे, परन्तु सम्यक् प्रकार की आलोचनापूर्वक जो वह तप करे तो शुद्ध हो सकता है। तप स्वभाव से ही सब पापों को नाश करता है। उसमें भी अच्छी आलोचनापूर्वक करे तो मचारित सिंह के जैसा है। यहां महा दुष्टकर्म करने वाली होने पर भी अच्छी आलोचनापूर्वक तप करके शुद्ध हुई ब्राह्मणी का दृष्टान्त है, उस को सुनो—

इस भरतक्षेत्र के विशालपुर नाम के नगर में जिसने शत्रुओं को अपना दास बनाया है ऐसा और सूर्य के समान तेजस्वी सूरतेज नाम का राजा था। सरल स्वभाव वाला, सौम्य, कृतज्ञ, परदुःख को जानने वाला, दाक्षिण्यता-युक्त, क्षमाशील, गंभीर, रूप में कामदेव जैसा और सब विद्या में पारंगत ऐसा वेदविचक्षण नाम का कोई परदेशी ब्राह्मण उस राजा का पुरोहित था। एक समय राजसभा में से निकलते समय रास्ते में ऊपर और नीचे का चित-कबरे रंग वाला और मोटा कंबल वस्त्र पहने हुए और माथे पर छाछ आदि के दो तीन पात्र रखे हुए, कि

भी तप रूप अग्नि से भस्म हो जाते हैं। कहा है कि—
"बाह्य और अभ्यन्तर तप रूप अग्नि प्रज्वलित हो जाने पर दुःख से दूर कर सके ऐसे कर्मों को भी संयमी पुरुष एक क्षणवार में क्षय कर देता है। कर्म के वशीभूत होकर कोई प्राणी बड़े भारी पापकर्म करे, परन्तु सम्यक् प्रकार की आलोचनापूर्वक जो वह तप करे तो शुद्ध हो सकता है। तप स्वभाव से ही सब पापों को नाश करता है। उसमें भी अच्छी आलोचनापूर्वक करे तो प्रक्षरित सिंह के जैसा है। यहां महा दुष्कर्म करने वाली होने पर भी अच्छी आलोचनापूर्वक तप करके शुद्ध हुई ब्राह्मणी का दृष्टान्त है, उस को सुनो—

इस भरतक्षेत्र के विशालपुर नाम के नगर में जिसने शत्रुओं को अपना दास बनाया है ऐसा और सूर्य के समान तेजस्वी सूरतेज नाम का राजा था। सरल स्वभाव वाला, सौम्य, कृतज्ञ, परदुःख को जानने वाला, दाक्षिण्यता-युक्त, क्षमाशील, गंभीर, रूप में कामदेव जैसा और सब विद्या में पारंगत ऐसा वेदविचक्षण नाम का कोई परदेशी ब्राह्मण उस राजा का पुरोहित था। एक समय राजसभा में से निकलते समय रास्ते में ऊपर और नीचे का चित-कबरे रंग वाला और मोटा कंबल वस्त्र पहने हुए और माथे पर छाछ आदि के दो तीन पात्र रखे हुए, कि
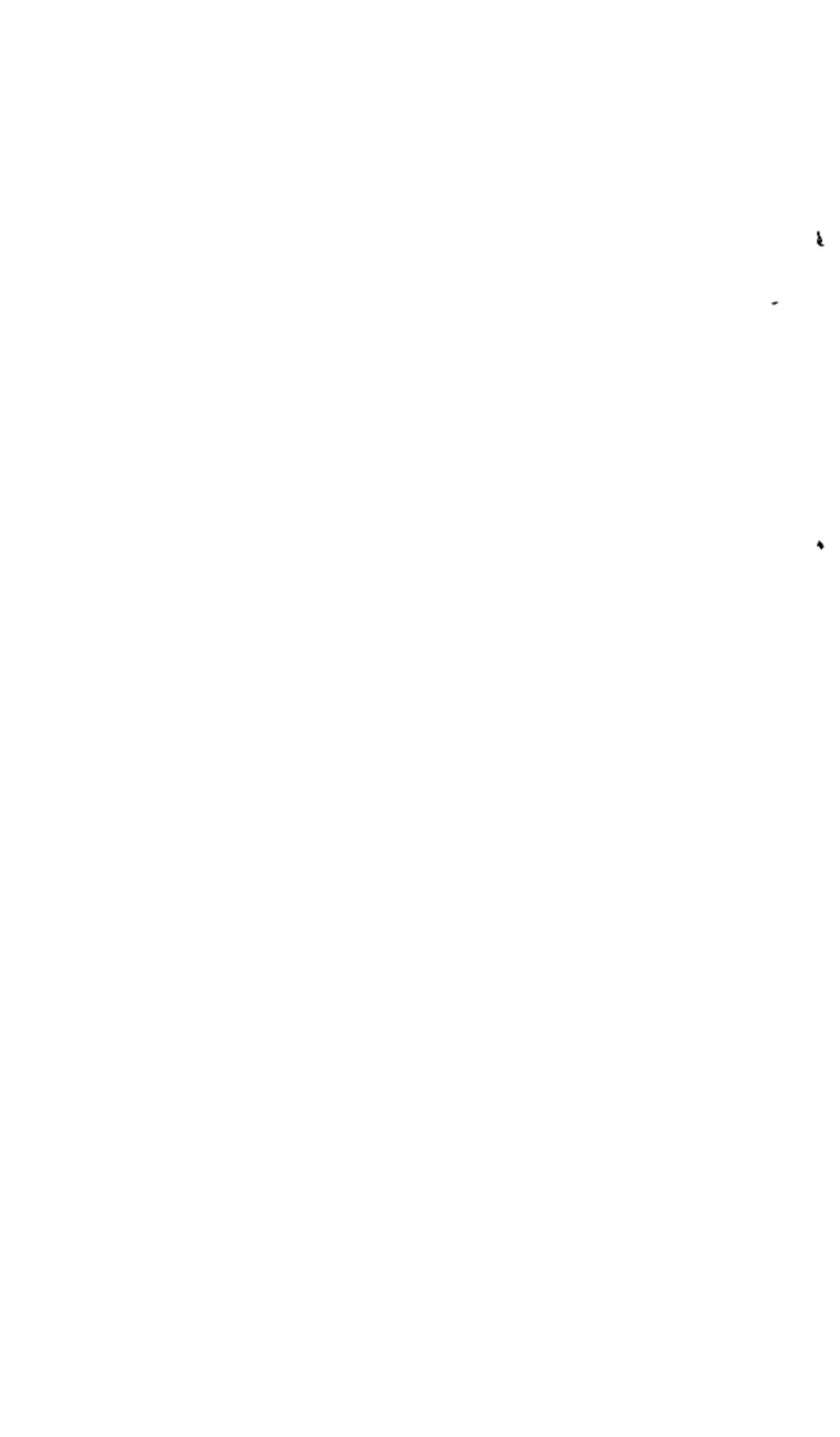
होता है और रोना आता है" पुरोहित ने दया लाकर उसको दो घड़े की क़ीमत देकर विदा किया।

अब पुरोहित आश्चर्य पाकर शोकरहित ऐसी अहीरिन को पूछने लगा—'हे वहिन ! दही दूध आदि के दो तीन वर्तन तेरे टूट गये जिससे आज तुझे वड़ा भारी नुकसान हुआ तो भी तू क्यों नहीं रोती ?' वह कुछ हँस करके कहने लगी—'हे भाई ! मेरा न रोने का कारण सुन— "जैसे वहुत ऋण है वह ऋण नहीं, वैसे वहुत दुःख है वह दुःख नहीं। जिससे मेरा हृदय वज्र के जैसा कठोर होगया है इसलिये मैं नहीं रोती।" यह सुनकर इस वेचारी को क्या महा दुःख पड़ा होगा ? ऐसा विचार करते विमवर्य पुरोहित का मन पिघल गया, जिससे वह फिर उसको कहने लगा—'हे वहन ! मैं तेरा वृत्तान्त सव सुनना चाहता हूँ, इसलिये यथार्थ तेरा वृतान्त मुझे कह।' वह कहने लगी—'हे भद्र ! अपना दुश्चरित्र किसी को कहना यह अपने को और पर को लज्जाकारक होता है। इसलिये उसे अपनी जांघ की तरह ढँका रखना ही अच्छा है, तो भी हे परदुःख को जानने वाले ! तेरा मन निरन्तर दूसरों के हित करने में तत्पर है इसलिये मेरा चरित्र केवल तुझे और मुझे सुनने में आवे ऐसे स्थान पर कहूँगी, जिससे इस समीप के वग़ीचे में तू अकेला ही आ।' उस
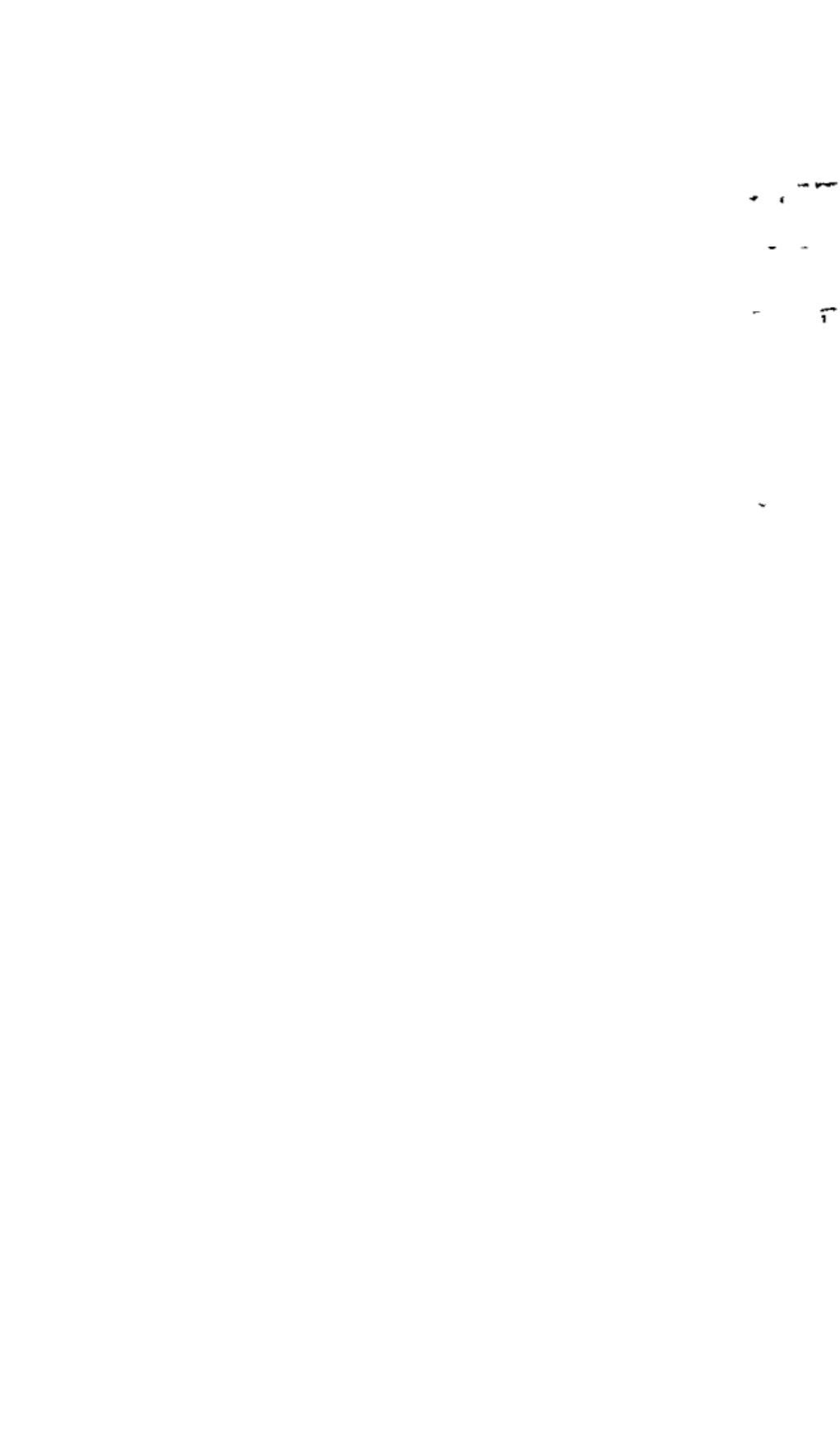
उसको पकड़ लिया। वह बहुत स्वरूपवती होने से उसने मकरध्वज राजा को अर्पण की। उसको देखकर राजा कामांध हो गया और उसको तुरन्त ही अपने अंतःपुर मे भेज दी। अब यहाँ अन्न, घास, काष्ठ आदि न मिलने से सारा नगर दुःखी होने लगा, यह देख कर हितबुद्धि से उस नगर के राजा ने मकरध्वज राजा को इच्छित दण्ड दिया, जिससे वह सन्तुष्ट होकर अपने नगर की तरफ़ चला गया। अब कामलक्ष्मी के रूपादि गुणों से मोहित होकर राजा ने उसको अपनी पट-रानी की और सब की स्वामिनी बना दी। दूसरी कुल-वती और शीलवती अनेक रानी थी, उनका तिरस्कार करके कामान्ध होकर कामलक्ष्मी को ही अपनी जीवितेश्वरी मानने लगा। इस प्रकार सब तरह के सुख के संयोगों से राजा बहुत रागी बनकर निरन्तर उसको सन्तुष्ट रखने का प्रयत्न करता था, तो भी वह लेशमात्र सन्तोष नही पाती थी। बाल्यावस्था से वह वेदसागर ब्राह्मण पर प्रीतिवाली होने से राजा के सन्मान को वह विष समान मानती थी। इस प्रकार निरन्तर विरक्त ऐसी कामलक्ष्मी के साथ अत्यन्त आसक्त होकर विलास करते २ बीस वर्ष चले गये। वह प्रतिदिन ऐसा ही विचार करती थी कि—'इस राजा के घर से कब मुक्त होऊँ और मेरे पति तथा पुत्र को

एक वर्ष के पुत्र को छोड़कर वह पानी लाने के लिये गाँव के बाहर गई, इतने में वहाँ शत्रु का लश्कर अकस्मात् आ पहुँचा। जब वह सैन्य वापिस चला गया तब उसकी सब जगह मैंने बहुत तलाश की; परन्तु उसका कुछ भी समाचार नहीं मिला। पीछे मेरे सम्बन्धियों ने दूसरी स्त्री करने को मुझे बहुत आग्रह किया, किन्तु मैं उसके स्नेह के वश होने से दूसरी स्त्री नहीं परणा। उसके बाद मैंने ही इस छोटे बच्चे को पालन करके बड़ा किया और कुछ बड़ा होते ही उसको सारस्प सब विद्याएँ पढ़ाईं। सुवर्णदान से प्रसरती हुई आपकी प्रसिद्धि सुनकर दरिद्रता से दुखित हुआ मैं पुत्र को साथ लेकर यहाँ आया हूँ।"

इस प्रकार वेदसागर ने जब अपना वृत्तान्त कहा, तब मन में बहुत खेद लाकर कामलक्ष्मी ने भी अपना सब हाल उसको कहा। पूर्व के स्नेहाधीन होने से अभी भी वह उसके साथ जाने की इच्छा वाली है, इसलिये कितने ही बहुमूल्य वाले रत्नों को देकर वह एकान्त में कहने लगी—"हे प्रिय! आपके इष्ट सांकेतिक स्थान दूसरे राज्य में अभी रत्नसहित इस पुत्र को भेज दो, पीछे अपने भी वहाँ चले जायँगे और आज से सातवें दिन रात्रि के समय स्मशान में रहा हुआ चण्डी देवी के मन्दिर में मैं किसी प्रकार भी आऊँगी, उस समय आप भी वहाँ अवश्य आना।" पीछे उसके कहे

एक वर्ष के पुत्र को छोड़कर वह पानी लाने के लिये गाँव के बाहर गई, इतने में वहाँ शत्रु का लश्कर अकस्मात् आ पहुँचा। जब वह सैन्य वापिस चला गया तब उसकी सब जगह मैंने बहुत तलाश की; परन्तु उसका कुछ भी समाचार नहीं मिला। पीछे मेरे सम्बन्धियों ने दूसरी स्त्री करने को मुझे बहुत आग्रह किया, किन्तु मैं उसके स्नेह के वश होने से दूसरी स्त्री नहीं परणा। उसके बाद मैंने ही इस छोटे बच्चे को पालन करके बड़ा किया और कुछ बड़ा होते ही उसको सारख्प सब विद्याएँ पढ़ाई। सुवर्णदान से प्रसरती हुई आपकी प्रसिद्धि सुनकर दरिद्रता से दुखित हुआ मैं पुत्र को साथ लेकर यहाँ आया हूँ।"

इस प्रकार वेदसागर ने जब अपना वृत्तान्त कहा, तब मन में बहुत खेद लाकर कामलक्ष्मी ने भी अपना सब हाल उसको कहा। पूर्व के स्नेहाधीन होने से अभी भी वह उसके साथ जाने की इच्छा वाली है, इसलिये कितने ही बहुमूल्य वाले रत्नों को देकर वह एकान्त में कहने लगी—"हे प्रिय! आपके इष्ट सांकेतिक स्थान दूसरे राज्य में अभी रजसहित इस पुत्र को भेज दो, पीछे अपने भी वहाँ चले जायँगे और आज से सातवें दिन रात्रि के समय स्मशान में रहा हुआ चण्डी देवी के मन्दिर में मैं किसी प्रकार भी आऊँगी, उस समय आप भी वहाँ अवश्य आना।" पीछे उसके कहे

यङ्कर प्रकाश हो रहा था, कहीं उलूक पक्षी बैठे हुए थे, हीं शव को अग्निसंस्कार करने आये हुए लोग प्रेतों से र रहे थे, कहीं डाकिनी और शाकिनी बड़े २ शब्दों से ास ले रही थीं, कहीं चपल पिशाच अट्टहास्य कर रहे थे, हीं कापालिक लोग अच्छे मनुष्यों के पवित्र मस्तकों को हिण करते थे, कहीं चारों तरफ से प्रसरती हुई दुर्गन्ध के र से नाक पूरा जाता था और एक दूसरे के ऊपर पड़ी २ खोपड़ियों से जहाँ गमन भी रुक जाता था ऐसा भय- ङ्कर स्मशान को निर्भय राजा ने देखा। कामलक्ष्मी को वह मुग्धा समझ कर कहने लगा—'हे देवि! यह भयङ्कर स्थान देखकर तूं मन में लेशमात्र भी डर नहीं, कारण कि यहाँ जो मनुष्य डरता है उसको भूत प्रेतादिक ..ते हैं।' यह मूढ़ राजा इतना नहीं जानता था कि वह दुष्टा तो दूसरों को भी डरावे ऐसी है। अब चण्डी देवी का मन्दिर आते ही घोड़े पर से नीचे उतर करके और काम- लक्ष्मी को तलवार देकर जिस समय राजा चण्डिका की पूजा करने में तत्पर हुआ उसी समय छिद्र देखने वाली उसी ने राजा का मस्तक छेद डाला। तुरन्त ही राजा मानो सर्वाङ्ग से देवी को प्रणाम करता हो, इस प्रकार चण्डिका के आगे लम्बा होकर गिरा।

अनुसार उसने अपने पुत्र को इष्ट स्थान पर भेज दिया। और संकेत की रात्रि के समय चण्डी के मन्दिर में आकर सो रहा। अब कामलक्ष्मी धूर्त्तता से सातवें दिन राजा से विनती करने लगी—हे स्वामिन्! एक दिन आपके सिर में भयङ्कर पीड़ा हुई थी, वह आपको याद है? उस समय बहुत से मन्त्र तन्त्र और औषधोपचार किये थे, तो भी वेदना शान्त न होने से मैं अन्न पानी का त्याग करके बहुत व्याकुल हो गई थी। पीछे उसकी शान्ति के लिये प्रसिद्ध महिमा वाली और स्मशान में रहने वाली चण्डी देवी की मैंने इस प्रकार मानता मानी थी कि—'हे मात यदि राजा की मस्तक पीड़ा शान्त हो जायगी तो रात्रि के समय राजा मेरे साथ आकर के आपकी पूजा करेंगे' इसलिये आज रात्रि के समय अपने दोनों चण्डी का पूजन करने के लिये वहाँ चलें। उसकी आज्ञा में वशीभूत होने से राजा ने तुरन्त ही उसका कहना मान लिया। पीछे सायंकाल में राजा चण्डी की पूजा करने के लिये कामलक्ष्मीके साथ घोड़े पर बैठ कर और पूजन की सामग्री सब ले करके स्मशान की तरफ चला। सुई से भी न भेदा जा सके, ऐसा अन्धकार चारों तरफ फैला हुआ था, उस समय नगर के बाहर निकला। रास्ते में कहीं सियाल शब्द कर रहे थे, कहीं राक्षसों का कोलाहल मच रहा था,

भयङ्कर प्रकाश हो रहा था, कहीं उलूक पक्षी बैठे हुए थे. कहीं शव को अग्निसंस्कार करने आये हुए लोग प्रेतों से डर रहे थे, कहीं डाकिनी और शाकिनी बड़े २ शब्दों से रास ले रही थीं, कहीं चपल पिशाच अट्टहास्य कर रहे थे. कहीं कापालिक लोग अच्छे मनुष्यों के पवित्र मस्तकों को ग्रहण करते थे, कहीं चारों तरफ से प्रसरती हुई दुर्गन्ध के पूर से नाक पूरा जाता था और एक दूसरे के ऊपर पड़ी हुई खोपड़ियों से जहाँ गमन भी रुक जाता था ऐसा भयङ्कर स्मशान को निर्भय राजा ने देखा। कामलक्ष्मी को वह मुग्धा समझ कर कहने लगा—'हे देवि! यह भयङ्कर स्थान देखकर तूं मन में लेशमात्र भी डर नहीं, कारण कि यहाँ जो मनुष्य डरता है उसको भूत प्रेतादिक ठगते हैं।' यह मूढ़ राजा इतना नहीं जानता था कि वह दुष्टा तो दूसरों को भी डरावे ऐसी है। अब चण्डी देवी का मन्दिर आते ही घोड़े पर से नीचे उतर करके और कामलक्ष्मी को तलवार देकर जिस समय राजा चण्डिका की पूजा करने में तत्पर हुआ उसी समय छिद्र देखने वाली उसी ने राजा का मस्तक छेद डाला। तुरन्त ही राजा मानो सर्वाङ्ग से देवी को प्रणाम करता हो, इस प्रकार चण्डिका के आगे लम्बा होकर गिरा।

पति के साथ सासरे जाती थी, उस समय रास्ते में डाका पड़ा, वहाँ सब साथी लूटे गये और मेरा स्वामी मर गया। जिसे वहां से इधर उधर भागती हुई मैं घोड़े पर चढ़ कर यहां आई हूँ। इस नगर में मेरा कोई सगा नहीं है; इसलिये माली के घर घोड़े को बांध कर मैं यहाँ आई हूं।' ऐसा उत्तर सुन कर 'यह स्वामी से रहित है इसलिये मेरे कुल को उचित है ?' ऐसा विचार करके वेश्या ने कपट वचनों से उसको प्रसन्न करके अपने घर ले गई। वहाँ सब से अधिक गीत आदि कलाएँ सिखा कर वेश्या ने उस को अपने कुलाचार में प्रवृत्त कर दिया।

अब एक दिन परदेश से कोई श्रीमान् तरुण पुरुष कामलक्ष्मी के घर आकर रहा। सब प्रकार के सुखों में निरन्तर अपनी इच्छानुकूल विलास करते २ उन दोनों का अधिक प्रेम बंध गया, कितने ही समय बाद एक दिन कोई काम के लिये उसको दूसरी जगह जाने की इच्छा हुई; इसलिये एकान्त में कामलक्ष्मी की वह रजा मांगने लगा। गमन करने वाला और मरण पाने वाला मनुष्य किसी से रोका नहीं जाता। कहा है कि—'पाहुने से कभी घर नही बसता।' दृढ़स्नेह होने पर भी जाने को तैयार हुआ, उसको रोकने में असमर्थ ऐसी कामलक्ष्मी

स्थान में जाकर वेदविचक्षण पिता की राह देखने लगा। परन्तु वे कोई कारणवश आये नहीं, उसके विरह से मन में दुःखी होकर वेदविचक्षण विचार करने लगा—'निश्चय रास्ते में मेरे पिता को चोरों ने मार डाला होगा, या व्याघ्र आदि ने उसका भक्षण कर लिया होगा।' इस प्रकार दुःखी होकर विचार किया कि—अहा! दयालु पिता से वियोग करा कर विधाता ने आज मेरा सर्वस्व लूट लिया। मेरी माता को मैंने देखा नहीं था, जिससे उसको ही मा और वाप समझता था; यह दुरात्मा दैव अभी इतना भी सहन न कर सका। स्त्रीजनों के उचित ऐसे दैव को उपालंभ देने से क्या? कारण कि मनुष्यों को शुभ और अशुभ का कारण पूर्वकृत कर्म ही हैं। संसार में जितने संयोग हैं ये सब वियोग के अन्तवाले होते हैं, ऐसी भावना करता २ अपने आप शनैः २ पिता के शोक को छोड़ दिया। उसके बाद विद्या के प्रभाव से सर्वत्र आदर सत्कार पाता हुआ घूमता २ यहां आया। हे कान्ते! वह वेदविचक्षण मैं स्वयं हूँ"। इस प्रकार उसका वृत्तान्त सुन कर तथा उसको अपना पुत्र समझ कर कामलक्ष्मी अपने हृदय में बहुत पश्चात्ताप करने लगी। उसने विचारा कि—'अहा! दैव को धिक्कार है! अति दुष्ट ऐसी मैंने अपने पुत्र के साथ सब लोक में निन्दित

में दुखी होती हुई कामलक्ष्मी अंबा को कहने लगी—'हे अंबा। आधि या व्याधि की व्यथा से मैं दुखी नहीं हूं, परन्तु मेरे शरीर को अग्नि में होम कर बहुत समय से विस्तार पाए हुए इस वेश्यापन के पापकर्मों की शुद्धि करने की इच्छा रखती हूं। स्त्रीपन यह प्राणियों के अनन्त-पापों को फल है, ऐसा सज्जन पुरुष कहते है। उसमें भी जो वेश्यां का जन्म है वह सड़ी हुई कांजी के बराबर है। सब पापों का मूल इस वेश्यां जन्म को तू श्रेष्ठ कहती है तो हे अंबा! जगत् में दूसरा खराब क्या है? वह कहे।' सर्वत्र निन्दापात्र ऐसा पुत्र के संयोग का दुष्कृत ही निश्चय से मरने का कारण था, यह उसने लज्जा के कारण प्रकट न किया। नागरिकों ने, कुट्टिनी ने और राजा ने उसको रोका तो भी काष्ठभक्षण के विचार से वह पीछे न हटी।

मरण में एकाग्र चित्त रख कर उसने सात लंघन किया। जिससे राजा आदि ने उसको आज्ञा दी। अब घोड़े पर चढ़ कर दीनदुःखियों को धन देती हुई, अपने दुष्कर्मों के दुःख से दुःखी ऐसी उसने नदी के किनारे नगरवासियों के द्वारा रची हुई चिता में निर्भय होकर प्रवेश किया। समीप रहे नागरिकों ने जब उसकी चिता में आग लगाई, तब भवितव्यता के योग से अकस्मात् बहुत वर्षा हुई। उस समय वर्षा के पानी से पराभव

में दुखी होती हुई कामलक्ष्मी अंबा को कहने लगी—'हे अंबा! आधि या व्याधि की व्यथा से मैं दुखी नहीं हूं, परन्तु मेरे शरीर को अग्नि में होम कर वहुत समय से विस्तार पाए हुए इस वेश्यापन के पापकर्मों की शुद्धि करने की इच्छा रखती हूं। स्त्रीपन यह प्राणियों के अनन्त-पापों का फल है, ऐसा सज्जन पुरुप कहते है। उसमें भी जो वेश्या का जन्म है वह सड़ी हुई कांजी के वरावर है। सव पापों का मूल इस वेश्या जन्म को तू श्रेष्ठ कहती है तो हे अंबा! जगत् में दूसरा ख़राव क्या है? वह कहे।' सर्वत्र निन्दापात्र ऐसा पुत्र के संयोग का दुष्कृत ही निश्चय से मरने का कारण था, यह उसने लज्जा के कारण प्रकट न किया। नागरिकों ने, कुट्टिनी ने और राजा ने उसको रोका तो भी काष्ठभक्षण के विचार से वह पीछे न हटी।

मरण में एकाग्र चित्त रख कर उसने सात लंघन किया। जिससे राजा आदि ने उसको आज्ञा दी। अव घोडे पर चढ़ कर दीनदुःखियों को धन देती हुई, अपने दुष्कर्मों के दुःख से दुःखी ऐसी उसने नदी के किनारे नगरवासियों के द्वारा रची हुई चिता में निर्भय होकर प्रवेश किया। समीप रहे नागरिकों ने जव उसकी चिता में आग लगाई, तव भवितव्यता के योग से अकस्मात् वहुत वर्षा हुई। उस समय वर्षा के पानी से पराभव

है कि इतने पाप करने पर भी अभी कुछ न्यून रहे होंगे, कि जिसे सर्वभक्षी अग्नि में प्रवेश करने पर भी उस न्यूनता को पूर्ण करने के लिये विधाता ने मुझे जीवित रक्खी।" कामलक्ष्मी का मन विषयों से उद्विग्न पाया हुआ था तो भी अनेक प्रकार के विचार करके और कुछ इन्द्रियों की चपलता से उस अहीर की गृहिणी (स्त्री) होकर रहीं। वहाँ गोदोहन, दही-मथन आदि गोपगृह के उचित सब कामों में संसर्ग से आहिस्ते २ कुशल हुई और दही छाछ आदि वेचने के लिये गोकुल में से प्रतिदिन इस नगर मे आने लगी। हे सुज्ञ पुरोहित! निश्चय! दुःख से दग्ध हुई पापिनी कामलक्ष्मी वह मै ही हूं। पति और पुत्र के वियोग से दुःखी होकर राजा की राणी होकर रही. वहाँ पूर्व के पति-स्नेह से वश होकर दुष्ट बुद्धि से राजा का भी मैंने वध किया। सर्प का दंश से पूर्व का पति मरा हुआ देख, वहा से भाग गई और देशान्तर में वेश्या हुई. वहाँ अपने पुत्र को यार करके रखा। उसके वाद चिता में पैठी और नदी के जल मे वहने लगी। अहा! नीच कर्म आचरण करती ऐसी मैं अभी गोपाङ्गना हुई हूं। इस प्रकार ऊपरा ऊपरी मेरे पर अनेक सङ्कट पड़े, तो हे भ्रात! अभी यह वरतन टूट जाने से मै कौनसे दुःख को रोऊँ? अनेक प्रकार के दुःख समूह से विकल हुई मैंने इसलिये कहा

करने से क्या ? अब तो पाप का नाश करने के लिये तप कर्म में यत्न कर। कारण कि प्राणी आत्मघात करने से अपना पूर्व कृत कर्म से मुक्त नही हो सकता, किन्तु उसका फल भोगने से या तीव्र तप करने से मुक्त होता है। सिद्धांत में कहा है कि—

'पावाणं च खलु भो कडाणं,
कम्माणं पुव्वि दुच्चिणणाणं।
दुप्पडिकंताणं वेइत्ता मुक्खो,
नत्थि अवेइता, तपसा वा सोसाइत्ता ॥'

'किये हुए कर्मों को पहले क्षय न किया हो या प्रायश्चित्त न लिया तो वे भोगने से ही छूट सकते हैं, भोगने में न आवे तो नही छूट सकते या तप से वे सूख जाते है।' इसलिये हे मात ! तीव्र ऐसा कोई तप कर कि जिससे अग्नि से सुवर्ण की तरह आत्मा शुद्ध हो जाय। सप्त धातुमय और असार ऐसा इस मानव शरीर से सुज्ञ मनुष्य आत्मा की शुद्धि करने वाला धर्मरूप सार का ही संग्रह करता है।। कहा है कि—

"अत्थिरेण थिरो समलेण
निम्मलो पर वसेण साहिणो।

वार भक्षण भी किया है। इसलिये निश्चय है कि इस संसार में कोई जीव अन्योऽन्य अपना या पर का नहीं है। तो भी अहो! अज्ञ प्राणी राग और द्वेष के वश से पाप को व्यर्थ उपार्जित करते हैं। इस संसार में जीवों का सम्बन्ध सब अनियमित है. इसलिये विवेकी पुरुष स्त्री पुत्रादि के प्रेम में बंधते नहीं है अर्थात् मोह नहीं पाते। जो वस्तु एक को अनुकूल है वही वस्तु दूसरे को प्रतिकूल होती है. जिससे वस्तुओं मे रम्यारम्य की व्यवस्था भी यथार्थ सत्य नहीं है। जब मन प्रसन्न हो तब जगत् अमृत जैसा लगता है और दुःख आने से वही विषमय लगता है। मन के संकल्प के अनुसार वस्तु रम्य और अरम्य लगती है, इसलिये ममत्व रहित ऐसा भवभीरु पुरुष राग द्वेष को छोड़कर समस्त वस्तुओं मे समता धारण करता है।"

इस प्रकार धर्मोपदेश श्रवण करके वे माता और पुत्र संसार से विरक्त हुए और दीक्षा लेने के लिये उत्सुक हुए। तब फिर आचार्य इस प्रकार कहने लगे—"जैसे स्वच्छ दीवार पर खैंचा हुआ चित्र अतिशय शोभित होता है. वैसे अच्छी प्रकार आलोचना पूर्वक शुद्ध हुए भव्य जीवों का व्रतग्रहण भी अधिक दीप्यमान होता है। इसलिये दीक्षा लेने का यदि तुम्हारा आग्रह हो तो जन्म से लेकर आज तक मन, वचन और काया से किये हुए पापों की प्रथम

विरुद्ध आचरणों से निन्दा उपार्जित नहीं की, वे प्राणी भी प्रशंसनीय है। या तो किसको स्खलना नहीं हुई? किसके सब मनोरथ पूर्ण हुए हैं? इस संसार में किसको निरन्तर सुख है? इस प्रकार का न्याय होने से कितनेक मनुष्य पूर्वकृत कर्मों से प्रेरित होकर निद्यकृत्य भी करता है: परन्तु उसकी शुद्धि की इच्छा रखने वाले से ऐसे वे सद्गुरु के पास अच्छी तरह आलोयणा ले कर जो तीव्र तप करे तो वे निश्चय प्रशंसा के योग्य है।' इस प्रकार उपदेश देता हुआ वेद विचक्षण सूरि अपना अन्तकाल समीप आया जान कर. सब प्राणियो के साथ क्षमत क्षामणा करके. श्रेष्ठ ऐसा पादपोपगमन अनशन करके तथा ध्यान और तप के वल से सर्व कर्मों का एक साथ क्षय करके. अन्तकृत केवली होकर परम पद को पाया।"

कामलक्ष्मी और वेदविचक्षण पुरोहित भारी दुष्कर्म करके भी ऐसे दुष्कर तप से पुनः गुरुपद पाया। बड़े पुरुष पापकर्म करने में समर्थ होते हैं वैसे क्षय करने में भी समर्थ होते हैं। किन्तु नीच पुरुष तो केवल पापकर्म करने में ही समर्थ होते है। इसलिये रे भव्यजनो! तप का अतुल प्रभाव इस दृष्टान्त से समझ लेना।

❋ दूसरा उल्लास ❋

सत्यस्वरूपी, परमब्रह्म पद में स्थित, ब्राह्मी* के पिता निर्लेप और जगद्‌बन्धु जैसे नाभिकुमार (ऋषभदेव) हमको कल्याण दें।

उस समय कुरु देश का अधिपति कुरु नामक प्रभु का पुत्र ललाट पर अंजली लगा कर पिता को इस प्रकार विनती करने लगा—"हे नाथ! कपाय के कटुक विपाक का आपने हमको ऐसा उपदेश दिया वह तो ठीक है, लेकिन प्रिया-पुत्र आदि का प्रेमपाश तो अत्यन्त दुःख से त्याग किया जा सकता है। अहो! एक तरफ मोह दुर्जय है और दूसरी तरफ हमको संसार का डर है। निश्चय! अभी व्याघ्र और दुरतटी (गहरी नदी) का विपम प्रसंग हमारे पर आ पड़ा है।" भगवन्त कहने लगे—हे वत्सो! विपय सुख तुच्छ और अनित्य है, अविच्छिन्न नित्य सुख तो मोक्ष में ही है। यह जीव शुभाशुभ जैसी गति में जाने वाला

---

* ब्राह्मी—सरस्वती जिन वाणी समझना, या प्रभु की पुत्री समझना।

यह दृष्टान्त देकर प्रभु ने कहा—हे वत्सो ! खंदक मुनि और डूंगर मुनि भी बहुत काल तक भव्य जीवों को प्रतिबोध देकर अन्त में परम पद को पाये ।

इस प्रकार कषाय कुटुम्ब के सम्बन्ध में एक २ कषाय का तात्कालिक खराब परिणाम समझ कर फिर उन चारों का तो कौन आश्रय करे ?

अगस्त्य के उदय से जल का, इसी प्रकार प्रभु के उपदेश से कषायों का उपशम हो जाने से सब राजकुमारों का मन निर्मल हो गया ।

* इति प्रथमोल्लास *

❀ दूसरा उल्लास ❀

सत्यस्वरूपी, परमब्रह्म पद मे स्थित, ब्राह्मी* के पिता निर्लेप और जगद्‌बन्धु जैसे नाभिकुमार (ऋषभदेव) हमको कल्याण दें।

उस समय कुरु देश का अधिपति कुरु नामक प्रभु का पुत्र ललाट पर अंजली लगा कर पिता को इस प्रकार विनती करने लगा—"हे नाथ! कषाय के कटुक विपाक का आपने हमको ऐसा उपदेश दिया वह तो ठीक है, लेकिन प्रिया-पुत्र आदि का प्रेमपाश तो अत्यन्त दुःख से त्याग किया जा सकता है। अहो! एक तरफ मोह दुर्जय है और दूसरी तरफ हमको संसार का डर है। निश्चय! अभी व्याघ्र और दुस्तटी (गहरी नदी) का विषम प्रसंग हमारे पर आ पड़ा है।" भगवन्त कहने लगे—हे वत्सो! विषय सुख तुच्छ और अनित्य है, अविच्छिन्न नित्य सुख तो मोक्ष में ही है। यह जीव शुभाशुभ जैसी गति में जाने वाला

---

* ब्राह्मी—सरस्वती जिन वाणी समझना, या प्रभु की पुत्री समझना।

धर्म के विचार को प्रकट करते हुए ऐसे पाँच कुलपुत्रों को देखे. वह क्या कहते हैं उसको सुनने के लिये वे समीप आकर सुनने लगे। उनमे प्रथम अभव्य कहने लगा— 'पुण्य, पाप, उसका फल, भोगने वाला, परलोक, जीव तथा बन्ध और मोक्ष इनमें से कुछ भी नहीं है। शीतता, उष्णता, आतापना, लोच और मलिनता धारण करने की सब व्यथाएँ धर्मबुद्धि से सहन करने मे आती है, किन्तु वे केवल कायक्लेश के लिये ही है। क्षुधा, मरण तपकर्म, प्रव्रज्या, त्याग, देव आदि का पूजन, धन का व्यय, मौन और जटा-धारण ये सब दम्भ ही है। धर्मकथा का कथन मुग्ध लोगो को ठगने के लिये ही है। जिसे तात्त्विक विषय ही स्वेच्छा से सेवन करने योग्य है।' दुरभव्य कहने लगा— 'इन्द्रिय सुखों का त्याग करके परलोक के सुख के लिये जो यत्न करना है वह मानो अपने हाथों से पक्षियों को उड़ा कर जाल रचता है, इसलिये जो कुछ हुआ हो उसको भोग लेना, पी लेना और पहन लेना यही धर्म मुझे तो इष्ट लगता है।' भव्य कहने लगा—'धर्म और अधर्म दोनों अच्छे है, सुज्ञ पुरुषों को उन दोनों का समान भाग से सेवन करना चाहिये किन्तु एक में ही आसक्त नहीं होना चाहिये।' आसन्नसिद्धिक कहने लगा—'धर्म, यह सब अर्थों का साधन है और चारों ही पुरुषार्थों में यह मुख्य है, इसलिये

होकर महामोहादिक सार्थवाह भी अपने अपने जमाई के पास ही रहे।

अब पांचों ही अभव्य आदि ने अपनी २ वल्लभा के साथ निरन्तर सुख भोगते हुए बहुत काल व्यतीत किया। एक दिन धन उपार्जन करने के लिये सब सामग्री तैयार करके और पांच जहाज़ों में अनेक प्रकार के किराना भर के, कौतुक मंगल किया है जिन्होंने ऐसे वे पांच कुल पुत्रों ने अपनी २ स्त्रियों के साथ उत्साहित होकर अच्छे दिन रत्नद्वीप की तरफ़ प्रयाण किया। उन्हो का जहाज़ वेग से समुद्र में जा रहा था, इतने में उन्हों का मानो प्रत्यक्ष भयंकर दुर्दैव ही हो ऐसा एक बादल आकाश में प्रकट हुआ, तुरन्त ही उल्कापात समान बिजली के चमत्कारों से. तथा तीव्र और बड़े २ गर्जारवों से. जहां अपनी भुजाएँ भी न दीख सकें ऐसा निबिड़ अंधकार से आकाश व्याप्त हो गया। उसी समय जहाज में बैठे हुए सब लोग अपने २ जीवन की आशा छोड़कर इसलोक और परलोक में कल्याणकारी देवगुरु का स्मरण करने लगे और धन पुत्र और कलत्र आदि में मोहित हुए. कितने ही कायर लोग मृत्यु आई देख कर मूर्छित होने लगे। कुछ समय में ही मूसलधार पानी बरसने लगा. जिससे अभाग्य योग से तत्काल ही उन्हों के जहाज़ पानी से पूर्ण भर गये और

रहा और तद्भवसिद्धिक ने अपनी सिद्धिगति नाम की भार्या के साथ करणीसार नामक वृक्ष के नीचे वास किया। इस प्रकार आश्रय मिलने से कुछ मन में निवृत्त होकर तृषा के कारण उन्होंने किसी खड्डे में रहे हुए खदिर का रस मिश्रित पानी पिया। पीछे क्षुधातुर ऐसे उन्होंने अत्यंत परिपक्व कैथ आदि फल खाये. इसी तरह स्त्रियाँ सहित निरन्तर अपनी आजीविका चलाने लगे। वहां अभव्य और दूरभव्य तो हर्षित होकर बहुत सुख मानने लगे। भव्य सुख और दुःख नहीं मानता रहा। आसन्नसिद्धिक दुःख मानने लगा और तद्भवसिद्धिक तो अत्यन्त दुःख मानने लगा।

एक दिन अनुकूल पवन से वहां वृक्ष प्रफुल्लित हुए. यह देख कर अभव्य इस प्रकार कहने लगा—'इन वृक्षों में अब थोड़े समय में पुष्प और फल आवेंगे. इसलिये अपना भाग्य अब जागृत हुआ।' दूरभव्य ने भी इसकी बात आनन्दपूर्वक स्वीकार ली। भव्य को तो यह सुन कर हर्ष या शोक कुछ भी न हुआ और 'यह जो हर्ष का स्थान हो तो पीछे शोक का स्थान कौन सा?' इस प्रकार आसन्न-सिद्धिक और तद्भवसिद्धिक कहने लगे।

अब टूटे हुए जहाज़ का निशान एक वृक्ष के ऊपर बांध करके वे अपने २ वृक्ष का रक्षण करते हुए सुख से

कहा यह मुझको भी मान्य है।' पीछे भव्य ने उनको इस प्रकार कहा कि—'अभी तो आप चले जाओ कारण कि कुछ वर्ष पीछे मैं वहाँ आने का विचार रखता हूँ' यह वचन उसकी नरगति कान्ता ने मान लिया। पीछे 'मैं एक वर्ष बाद आऊँगा' ऐसा आसन्नसिद्धिक ने कहा, जिसेसे उसकी स्वर्गगति स्त्री बोली—'हे प्रिय! आपने ठीक कहा।' यह देख कर और सुनकर 'अहो! इन दम्पतियों का मन वचन और काया से जैसा प्रकृति सादृश्य देखने में आता है, ऐसा दूसरी जगह कहीं देखने में नहीं आया। दम्पती का संयोग दूर दूर से एकत्र मिलता है, परन्तु उनमें गुण, रूप और प्रकृति आदि का मिलान होगा यह निश्चय विधाता की ही कुशलता है।' कहा है कि—

तत्तिल्लो विहिराया जाणइ दूरे वि जो जहिं वसइ।
जं जस्स होइ सरिसं तं तस्स मिइज्जिअं देइ॥

'चतुर विधाता जो कोई दूर जाकर रहा हो उस को भी जानता है और जो जिसके सदृश हो वह उसको मिला देता।' इस प्रकार के उन चार कुल-पुत्रों को देख कर मन मे विचार करते हुए उन्होंने 'अब तुझे क्या करना है?' ऐसा तद्भवसिद्धिक को पूछा। तब वह बोला कि—'हे निष्कारण बान्धव! विना विलम्ब मुझको यहाँ से दुरंत

दुःख समुद्र के उस पार ले जाओ। यह स्थान मधु
तलवार की धारा के अग्र भाग का चाटने के बराबर
यहाँ बहुत प्रकार के कष्ट है और सुख अति तुच्छ मात्र
इस प्रकार अपने पति के वचन सुनकर उनकी
स्त्री हर्षित होकर बोली—'हे प्राणेश ! आपने जो
वह मुझे अक्षरशः रुचता है।' पीछे तत्त्वसिद्धिक
स्त्री सहित उन मनुष्यों के साथ नाव में बैठ कर
जहाज वाले के पास गया। उसने अपना सब वृत्तान्त
कहा और उसके साथ समुद्र को उतर करके वह
सगे सम्बन्धियों से मिला और निरन्तर सुखी हुआ।

हे वत्सो ! यह दृष्टान्त तुमको जो कहा है उसका
उपनय कहता हूँ वह सुनो—

यहाँ अभव्यादिक जो पाँच कुलपुत्र कहे है, वे पाँच
गति में जाने वाले पाँच प्रकार के जीव समझना, जन्म
मरण और रोग आदि से चारों तरफ व्याप्त और दु
से अन्त हो सके ऐसे इस संसार को शुद्ध मनुष्यों ने स
कहा है। दुःख, दारिद्र्य, दौर्भाग्य, रोग, उद्वेग आदि
व्याकुल यह मनुष्य जन्म कंथारी कुडंग द्वीप समान
निरन्तर दुःखों को ही भोगने का होने से तिर्यंचगति
नरकगति इन दोनों को कंथारी और कपिकच्छु नाम

वृक्ष सदृश कहा है। पाप के उदय से ही इन दोनों गति प्राणियों को स्त्री रूप से प्राप्त होती है। इन गतियों का बन्ध प्रायः पापी जीवों को ही होता है। सुख और दुःख एक साथ रूप नरगति और स्वर्गगति है, इनको बदरी और उदुम्बर (गूलर) के विशाल वृक्ष समान जानना। सामान्य सत्कार्यों से प्राणियों को ये दोनों गति मियारूप से प्राप्त होती है और प्रायः सामान्य जीवों को ही इनमें रहने की इच्छा होती है। तथा उत्तम मनुष्यों को तो प्रायः एकान्त और अत्यन्त सुखपूर्ण महोदय गति-सिद्धि गति की ही निरन्तर इच्छा होती है। मनुष्यजन्म में रहे हुए जीव आधिव्याधि और वियोग आदि दुःख प्राप्त न होने की बुद्धि से फल समान ऐसे अपने पुत्रादिकों का मोह से रक्षण करते हैं। सुवित्त नामक जहाज वाला यहाँ धर्माचार्य समझना, और उसके निर्यामक (नाविक) मनुष्य के तुल्य धर्मोपदेशक साधु जानना। कहा है कि—

'प्राणिनोऽपारसंसार-पारावारेऽत्र मज्जतः।
तारयन्ति ततो वाचं-यमा निर्यामकाः स्मृताः॥'

'यह अपार संसार रूप समुद्र में डूबते हुए प्राणियों को तारते है इसलिये साधुओं को निर्यामक कहे हैं' जहाज़ के स्थान पर यहां निर्दोष जैनदीक्षा जाननी और अत्यंत

है. ऐसे तत्त्व से दुःखरूप मोक्ष में जाने की, अपने हित को चाहने वाला ऐसा कौन इच्छा करे ?" इस प्रकार एकान्त सुख वाले मोक्ष का तिरस्कार करके, खड्डे के सूअर की तरह विषयरूप कीचड़ में निरन्तर आसक्त होकर रहता हुआ अभव्य जीव आधि व्याधि जन्म जरा और मरण आदि [illegible] से दुःखी होकर इस अनन्त संसार में निरन्तर घूमा करेगा। दूरभव्य ने उन्हों को इस प्रकार कहा—"हे महाराज ! आप जो कहते है वे सब परिणाम से हितकारक हैं, इसलिये मैं उसका बहुत समय बाद आराधन करूँगा, अभी तो नहीं। यौवन, धनसम्पत्ति, अनुकूल पत्नी और नीरोगी शरीर इत्यादि अभी तो प्राप्त हुए हैं. उनको समझदार मनुष्य कैसे त्याग करे ? यौवनावस्था में पंचेन्द्रिय सुखों का त्याग करके धर्म का सेवन करना वह 'पीलु के समय चोंच पाके' इस कथन के जैसा समझना।" बहुत काल व्यतीत होने बाद फिर साधु महात्माओं ने करुणा बुद्धि से ऐसा ही उपदेश किया. परन्तु फिर भी उसने पहले कहे अनुसार ही जवाब दिया। इस प्रकार सत्यासत्य आलम्बनों से साधुओं को ठगता हुआ वह बेचारा दूरभव्य धर्म को नहीं पा सकता। वह प्रायः नरक और तिर्यंच गति में तथा कोई बार मनुष्य एवं देवगति में भी फेर २ दुःखाकुल होकर और अनन्तकाल पर्यन्त

है. ऐसे तत्त्व से दुःखरूप मोक्ष में जाने की, अपने हित को चाहने वाला ऐसा कौन इच्छा करे ?" इस प्रकार एकान्त सुख वाले मोक्ष का तिरस्कार करके, खड्डे के सूअर की तरह विषयरूप कीचड़ में निरन्तर आसक्त होकर रहता हुआ अभव्य जीव आधि व्याधि जन्म जरा और मरण आदि [illegible] से दुःखी होकर इस अनन्त संसार में निरन्तर घूमा करेगा। दूरभव्य ने उन्हों को इस प्रकार कहा— "हे महाराज ! आप जो कहते हैं वे सब परिणाम से हितकारक हैं, इसलिये मैं उसका बहुत समय बाद आराधन करूँगा. अभी तो नहीं। यौवन. धनसम्पत्ति. अनुकूल पत्नी और नीरोगी शरीर इत्यादि अभी तो प्राप्त हुए हैं. उनको समझदार मनुष्य कैसे त्याग करे ? यौवनावस्था में पंचेन्द्रिय सुखों का त्याग करके धर्म का सेवन करना वह 'पीलु के समय चोंच पाके' इस कथन के जैसा समझना।" बहुत काल व्यतीत होने बाद फिर साधु महात्माओं ने करुणा बुद्धि से ऐसा ही उपदेश किया. परन्तु फिर भी उसने पहले कहे अनुसार ही जवाब दिया। इस प्रकार सत्यासत्य आलम्बनों से साधुओं को ठगता हुआ वह बेचारा दूरभव्य धर्म को नहीं पा सकता। वह प्रायः नरक और तिर्यंच गति में तथा कोई वार मनुष्य एवं देवगति में भी फेर २ दुःखाकुल होकर और अनन्तकाल परिभ्रमण

छोड़ कर आगामी वर्ष में अवश्य आपके उपदेश के अनुसार वर्तन करूँगा।' पीछे दूसरे वर्ष साधु के उपदेश से श्रद्धावन्त होकर उसने तुरन्त जैन दीक्षा ग्रहण की और उसका अच्छी तरह आराधन करके वह स्वर्ग में गया। वहाँ बहुत काल सुख को भोग कर, पीछे वहाँ से मनुष्य-गति में आकर मोक्ष जायगा। अब पुण्य के माहात्म्य से पूर्ण ऐसे साधुओं के वचनों को सुन कर तद्भवसिद्धिक हर्षित होकर इस प्रकार कहने लगा—'हे साधुओं में श्रेष्ठ! आपने अनादिकाल से मोहनिद्रा के योग से नष्ट चेतन वाला ऐसा मुझको अच्छा प्रतिबोध दिया है। अवश्य! मै धन्य पुरुषों से भी धन्य हूं, कारण कि उन्मार्ग में जाता हुआ मुझको आप सन्मार्ग के उपदेशक मिले। इस अपार संसार सागर में डूबता हुआ मैंने सद्धर्म नावयुक्त निर्यामक समान आपको पाया। पांच इन्द्रिय रूप चोरों ने स्नेहपाश से बांध कर क्षुधा, प्यास आदि दुःखों से दुखित, ऐसे मुझको संसार रूप जेलखाने में डाला है। वहाँ जन्म, मरण, आधि और व्याधि रूप चाबुकों से प्रतिदिन मार खाता हुआ मैंने इतने समय तक किसी की भी शरण नहीं पाई थी, अब अच्छे भाग्य से अशरण को शरण देने वाले और बंधन से मुक्त करने वाले ऐसे आप मुझे प्राप्त हुए है। संसार में मनुष्य और देवता की संपत्ति

छोड़ कर आगामी वर्ष में अवश्य आपके उपदेश के अनुसार वर्त्तन करूँगा।' पीछे दूसरे वर्ष साधु के उपदेश से श्रद्धावन्त होकर उसने तुरन्त जैन दीक्षा ग्रहण की और उसका अच्छी तरह आराधन करके वह स्वर्ग में गया। वहाँ बहुत काल सुख को भोग कर, पीछे वहाँ से मनुष्य-गति में आकर मोक्ष जायगा। अब पुण्य के माहात्म्य से पूर्ण ऐसे साधुओं के वचनों को सुन कर तद्भवसिद्धिक हर्षित होकर इस प्रकार कहने लगा—'हे साधुओं में श्रेष्ठ! आपने अनादिकाल से मोहनिद्रा के योग से नष्ट चेतन वाला ऐसा मुझको अच्छा प्रतिबोध दिया है। अवश्य! मैं धन्य पुरुषों से भी धन्य हूँ, कारण कि उन्मार्ग में जाता हुआ मुझको आप सन्मार्ग के उपदेशक मिले। इस अपार संसार सागर में डूबता हुआ मैंने सद्धर्म नावयुक्त निर्यामक समान आपको पाया। पांच इन्द्रिय रूप चोरों ने स्नेहपाश से बांध कर क्षुधा, प्यास आदि दुःखों से दुखित, ऐसे मुझको संसार रूप जेलखाने में डाला है। वहाँ जन्म, मरण, आधि और व्याधि रूप चाबुकों से प्रतिदिन मार खाता हुआ मैंने इतने समय तक किसी की भी शरण नहीं पाई थी, अब अच्छे भाग्य से अशरण को शरण देने वाले और बंधन से मुक्त करने वाले ऐसे आप मुझे प्राप्त हुए है। संसार में मनुष्य और देवता की संपत्ति

त्याग करके उसने मुनि के पास दीक्षा ली। पीछे निरंतर
प्रमाद रहित रह कर साधु धर्म का आचरण करता हुआ
ऐसा तद्भवसिद्धिक सर्व कर्मों का क्षय करके उसी भव में
मुक्ति पद को पाया। पाप कर्म से प्रायः नरक और तिर्यच
गति में भटकता हुआ और कोई वार अज्ञान कष्ट क्रिया
से देव और मनुष्य गति में जाता हुआ ऐसा भव्य भी
भाग्यहीन को जैसे सुवर्ण निधान मिले, वैसे अनन्तकाल
व्यतीत होने वाद मोक्ष पद पावेगा। दूरभव्य अनन्तकाल
जाने वाद सिद्ध होगा, या सात आठ भव में भव्य, तीन
भव में आसन्नसिद्धिक और उसी भव में तद्भवसिद्धिक
मोक्ष जायँगे। इनके मोह की न्यूनाधिकता से इस
प्रकार भेद होते हैं। जितना जिसको मोह, उतना उसको
संसार समझना। मोह का चय और अपचय के अनुसार
प्राणियों को संसार होता है। इसलिये पापकर्म के अंकुर
रूप दुःख के समूह को देने वाला और आत्मतेज की
हानि करने वाला ऐसा मोह मोक्षार्थी जीवों को सर्वथा
त्याग करने योग्य है। संसार में जो जीव घूमे है, घूम रहे
हैं, और घूमेंगे, ये सब मोह की ही महिमा हैं। पैशुन्य.
उन्मार्ग का उपदेश, मिथ्या वचन, विपय में अत्यन्त
आसक्ति, मिथ्यात्व में रमणता, आर्हत धर्म की अवज्ञा
और सुसाधुओं का उपहास ये सुज्ञ मनुष्यों ने महामोह

याग करके उसने मुनि के पास दीक्षा ली। पीछे निरंतर माद रहित रह कर साधु धर्म का आचरण करता हुआ सा तद्भवसिद्धिक सर्व कर्मों का क्षय करके उसी भव में मुक्ति पद को पाया। पाप कर्म से प्रायः नरक और तिर्यंच गति में भटकता हुआ और कोई वार अज्ञान कष्ट क्रिया से देव और मनुष्य गति में जाता हुआ ऐसा भव्य भी भाग्यहीन को जैसे सुवर्ण निधान मिले. वैसे अनन्तकाल व्यतीत होने वाद मोक्ष पद पावेगा। दूरभव्य अनन्तकाल जाने वाद सिद्ध होगा, या सात आठ भव मे भव्य, तीन भव में आसन्नसिद्धिक और उसी भव में तद्भवसिद्धिक मोक्ष जायँगे। इनके मोह की न्यूनाधिकता से इस प्रकार भेद होते है। जितना जिसको मोह, उतना उसको संसार समझना। मोह का चय और अपचय के अनुसार प्राणियों को संसार होता है। इसलिये पापकर्म के अंकुर रूप दुःख के समूह को देने वाला और आत्मतेज की हानि करने वाला ऐसा मोह मोक्षार्थी जीवों को सर्वथा त्याग करने योग्य है। संसार में जो जीव घूमे है, घूम रहे है, और घूमेंगे, ये सब मोह की ही महिमा है। पैशुन्य. उन्मार्ग का उपदेश. मिथ्या वचन. विषय में उत्पन्न आसक्ति, मिथ्यात्व में रमणता. आर्हत धर्म की अवज्ञा और सुसाधुओं का उपहास ये मूढ़ मनुष्यों ने महामोह

'एक मिया का दर्शन ही हो दूसरे दर्शनों से क्या ? जिस दर्शन में सराग मन वाला भी निर्वृत्ति (सुख) को प्राप्त कर सकता है।'

मिथ्या शास्त्रों की युक्तियों से मुग्ध लोगों को ठगने के लिये ही जगत् में दूसरे दर्शनों को दांभिक लोगो ने रचे हैं। इसलिये जितने समय तक तुम्हारे पास इस विषय की सामग्री हो उतने समय तक मन में शंका रखे विना यथेच्छ विलास करो। पाखण्डी लोगों से ठगा कर प्राप्त हुए भोगों को तुम त्याग करो नहीं।" इस प्रकार वह कुबुद्धि सेठ दूसरे को भी उन्मार्ग का उपदेश देता था। एक दिन प्रीतिमती को अच्छे लक्षण वाले पुत्र का प्रसव हुआ, जिससे सेठ ने हर्षित होकर उसका वधामणी महोत्सव किया। पिता आदि ने उसका देवदिन्न ऐसा नाम रखा। निरन्तर पॉच धात्रियों से लालन पालन होता हुआ वह सुख पूर्वक वृद्धि पाने लगा। योग्य अवसर जान कर भाग्य और सौभाग्य के स्थान रूप उसको पढ़ने के लिये पिता ने कलाचार्य के घर रखा। वहां परिश्रम करके क्रम से बहत्तर कलाओं को सीखने लगा। अब उसी नगर में सुन्दर नाम का धनिक सार्थवाह रहता था। रूप में रति से भी अधिक रूपवती गुणों से दूसरे को शरमाने वाली और स्त्रियों में मुकुट समान ऐसी सरस्वती

उच्छृङ्खल ऐसे उसके वचन सुन कर देवदिन्न क्रोधपूर्वक मन में विचारने लगा—"सब स्वजनवर्ग के समक्ष इसको परण कर तुरन्त ही उसका अवश्य त्याग कर देना, और दृष्टि से भी नहीं देखनी। जिससे अपने गर्विष्ठ वचन के फल को वह अनुभव करे।" चतुर सरस्वती इसकी चेष्टा से उस प्रकार के रहस्य को समझ गई। अब वे दोनों अपने २ उचित शिक्षा पाकर अपने २ घर गये।

अब यहां देवदिन्न कुमार को अपनी २ कन्या देने के लिये बहुत श्रीमान् लोग प्रियंगु सेठ के घर आने लगे। परन्तु वह अपने पिता को इस प्रकार कहने लगा—'हे तात! सुन्दर सार्थवाह की कन्या सरस्वती सिवाय दूसरी कोई कन्या मैं नहीं परणूंगा।' अपना एक ही पुत्र होने से वह अधिक प्रिय था, जिससे पिता भी उसकी प्रतिज्ञा को अन्यथा नहीं कर सका। जिससे अपनी कन्या देने को आये हुए सब श्रेष्ठियों की उपेक्षा करके उसने सुंदर सार्थवाह को ब्राह्मण के द्वारा इस प्रकार कहलाया—"हे सार्थेश! नाम और विद्या में सरस्वती तुम्हारी कन्या है. उसको दिव्य स्वरूप वाले ऐसे मेरे पुत्र के लिये दें। कारण कि कला और स्वभाव में तुल्य ऐसे देवदिन्न और सरस्वती का सम्बन्ध मुझे सुवर्ण और मणि के जैसा लगता है। समान स्थिति और आचरणों से अपनी प्रीति प्रथम से ही चली

किसी कारण से उसको अपने घर लाना चाहता था, परन्तु अपना पुत्र नाराज़ हो जायगा इस भय से वह किसी दिन भी उसको अपने घर नहीं ला सका। मन वचन और काया से निर्मल शील व्रत पालती हुई सरस्वती खेद रहित पिता के घर रहने लगी और देवदिन्न पिता की कृपा से निरन्तर निश्चिन्त होकर अपने मित्रों के साथ उद्यान आदि में अनेक प्रकार की क्रीड़ाएँ करता हुआ रहने लगा।

अब एक दिन दो तीन मित्रों के साथ बात करने में व्यग्र मन हो जाने से, लीलापूर्वक राजमार्ग में चलते समय देवदिन्न के कन्धे से मार्ग में सामने से आती हुई कामपताका नाम की राजमान्य वेश्या को धक्का लग गया। राजा की कृपापात्री वेश्या मन में बहुत खेद पाकर और देवदिन्न का हाथ पकड़ कर ईर्ष्या पूर्वक कहने लगी—'यौवनावस्था में अपनी कमाई हुई लक्ष्मी को दान भोगादि से उपभोग करने वाले को कभी ऐसा गर्व हो तो वह योग्य है, परन्तु तू तो अभी पिता की लक्ष्मी का उपभोग करता है, तो हे श्रेष्ठिकुमार! मिथ्या अहंकार को धारण करके कन्धे से मनुष्यों को आघात करता हुआ कैसे चलता है? सोलह वर्ष का होने पर जो पुत्र पिता की

किसी कारण से उसको अपने घर लाना चाहता था, परन्तु अपना पुत्र नाराज़ हो जायगा इस भय से वह किसी दिन भी उसको अपने घर नहीं ला सका। मन वचन और काया से निर्मल शील व्रत पालती हुई सरस्वती खेद रहित पिता के घर रहने लगी और देवदिन्न पिता की कृपा से निरन्तर निश्चिन्त होकर अपने मित्रों के साथ उद्यान आदि में अनेक प्रकार की क्रीड़ाएँ करता हुआ रहने लगा।

अब एक दिन दो तीन मित्रों के साथ बात करने में व्यग्र मन हो जाने से, लीलापूर्वक राजमार्ग में चलते समय देवदिन्न के कन्धे से मार्ग में सामने से आती हुई कामपताका नाम की राजमान्य वेश्या को धक्का लग गया। राजा की कृपापात्री वेश्या मन में बहुत खेद पाकर और देवदिन्न का हाथ पकड़ कर ईर्ष्या पूर्वक कहने लगी— 'यौवनावस्था में अपनी कमाई हुई लक्ष्मी को दान भोगादि से उपभोग करने वाले को कभी ऐसा गर्व हो तो वह योग्य है, परन्तु तू तो अभी पिता की लक्ष्मी का उपभोग करता है, तो हे श्रेष्ठिकुमार! मिथ्या अहंकार को धारण करके कन्धे से मनुष्यों को आघात करता हुआ कैसे चलता है? सोलह वर्ष का होने पर जो पुत्र पिता की

किसी कारण से उसको अपने घर लाना चाहता था, परन्तु अपना पुत्र नाराज़ हो जायगा इस भय से वह किसी दिन भी उसको अपने घर नहीं ला सका। मन वचन और काया से निर्मल शील व्रत पालती हुई सरस्वती खेद रहित पिता के घर रहने लगी और देवदिन्न पिता की कृपा से निरन्तर निश्चिन्त होकर अपने मित्रों के साथ उद्यान आदि में अनेक प्रकार की क्रीड़ाएँ करता हुआ रहने लगा।

अब एक दिन दो तीन मित्रों के साथ बात करने में व्यग्र मन हो जाने से, लीलापूर्वक राजमार्ग में चलते समय देवदिन्न के कन्धे से मार्ग में सामने से आती हुई कामपताका नाम की राजमान्य वेश्या को धक्का लग गया। राजा की कृपापात्री वेश्या मन में बहुत खेद पाकर और देवदिन्न का हाथ पकड़ कर ईर्ष्या पूर्वक कहने लगी— 'यौवनावस्था में अपनी कमाई हुई लक्ष्मी को दान भोगादि से उपभोग करने वाले को कभी ऐसा गर्व हो तो वह योग्य है, परन्तु तू तो अभी पिता की लक्ष्मी का उपभोग करता है, तो हे श्रेष्ठिकुमार ! मिथ्या अहंकार को धारण करके कन्धे से मनुष्यों को आघात करता हुआ कैसे चलता है ? सोलह वर्ष का होने पर जो पुत्र पिता की

मेरी यह अवस्था क्रीडा में ही वृथा चली जाती है।
कहा है कि—

'प्रथमे नार्जिता विद्या द्वितीये नार्जितं धनम् ।
तृतीये नार्जितो धर्मः स तुर्ये किं करिष्यति॥'

"जिसने प्रथमावस्था में विद्या प्राप्त नहीं की, दूसरी अवस्था में धन प्राप्त नही किया और तीसरी अवस्था में धर्मकार्य नही किया तो वह चौथी अवस्था में क्या कर सकेगा ?" पीछे तुरन्त ही घर पर आकर और विनय से मस्तक नमा कर शुभ उत्साह वाले देवदिन्न ने आदर-पूर्वक पिता को इस प्रकार कहा—'हे तात ! किराना से जहाज़ों को भर कर समुद्र के उस पार के द्वीप में लक्ष्मी प्राप्त करने के लिये मै जाऊँगा, इसलिये आप मुझको आज्ञा दें।' सेठ लोभ के वश होने पर भी पुत्र के स्नेह से उसको कहने लगा—'हे वत्स ! परदेश विषम (कठिन) है, उसमे भी समुद्रमार्ग तो विशेष कठिन है। कुल का आलंबन भूत तू मेरे एक ही पुत्र है, जिसे प्राण के संदेह वाली इस समुद्र यात्रा को मत कर।' उसके उत्तर में देवदिन्न ने कहा—'हे तात ! उद्यम से ही लक्ष्मी प्राप्त होती है, और जो उद्यम में आलस्य करता है, उससे लक्ष्मी दूर २ भागती है। कहा है कि—

अब उत्साहपूर्वक श्रेष्ठीनन्दन देवदिन्न ने पारस देश के किनारे की तरफ़ शीघ्र ही खलासियों के द्वारा जहाज़ चलाया। उस समय नाव को सीधे मार्ग में चलाने के लिये बहुत परिश्रम किया, किन्तु दुर्दैव के योग से प्रचण्ड पवन से प्रेरित होकर जहाज़ वक्र घोड़े की तरह उन्मार्ग में चलने लगा। 'यह जहाज़ अवश्य कहीं न कहीं टकरा कर टूट जायगा' ऐसा विचार कर नाव में बैठे हुए देवदिन्न आदि सब खेद करने लगे। इतने में दैवयोग से स्वच्छ और अति ऊँचे है मन्दिर जिसमें ऐसे कोई अपरिचित द्वीप में वह जहाज आ पहुँचा। इसलिये मानो अपने नया जन्म पाये हों ऐसा मानते हुए देवदिन्न आदि सब हर्षपूर्वक जहाज़ से भूमि पर उतरे।

देवदिन्न ने वहाँ किसी मनुष्य से पूछा—'इस गाँव का क्या नाम है? यहाँ राजा कौन है? और उसके बड़े बड़े अधिकारी लोग कौन कौन हैं? वह कहने लगा—'हे सेठ! इस गाँव का नाम अन्यायपुर है, प्रचण्ड आज्ञा वाला ऐसा निर्विचार नाम का यहाँ राजा है, सुज्ञ सर्वंगिल नाम का उसका मन्त्री है, शिलापात नाम का पुरोहित है और अनाचार नाम का राजा का भण्डारी है। यहाँ सर्वत्र प्रसिद्धि पाया हुआ सर्वलुंटाक नाम का कोतवाल है और श्रेष्ठता को प्राप्त हुआ अज्ञान राशि नाम का तपस्वी है। राजा की

कृपापात्र और नगर के सब बडे बड़े पुरुषों को माननीय ऐसी कूटबुद्धि नाम की परिव्राजिका है। राजा के ऊपर जब शत्रुओं का भयंकर संकट आता है तब, कपट बुद्धि की निधान रूप वह उसको युक्ति बतलाती है। उसकी बुद्धि के बल से राजा सब शत्रुओं को जीत कर उनकी समस्त लक्ष्मी को अपने आधीन कर लेता है।'

इस प्रकार उस मनुष्य के मुख से सब व्यक्तियों का हाल जान कर प्रौढ़ मनुष्यों के साथ देवदिन्न ने राजा के पास जाकर प्रणाम किया। वहां राजा से सम्मान पाकर सभासद के उचित मर्यादा पूर्वक बैठा २ वह राज्य की व्यवस्था देखता रहा। इतने में अपने केशों को बखेरती हुई तथा अपनी छाती को कूटती हुई और बड़े शब्दों से पुकार करती हुई ऐसी कोई वृद्ध स्त्री वहां आई। उस समय 'हे अम्ब! तू कौन है और क्यों पुकार करती है?' ऐसा राजा ने पूछा तब वह कहने लगी--'हे नाथ! मैं चोर की माता हूं और आपके नगर में रहती हूं। परन्तु शुभाशुभ संताप में किसी को भी कभी उत्पन्न नहीं करती, किसी के साथ कलह भी नहीं करती, वैसे मैं किसी के घर भी नहीं जाती।' यह सुन कर 'अहो! वचन में न आ सके ऐसा इसका सुशीलपना दीखता है।' इस प्रकार हृदय में आश्चर्य पाकर राजा ने पूछा—'तब क्या है?' वह कहने

लगी—"हे राजन् ! अन्धे की लकड़ी तुल्य मेरा अकेला पुत्र इस नगर में निरन्तर चोरी करके अपना गृह-निर्वाह चलाता था, वह आज देवदत्त सेठ के घर चोरी करने गया था, वहां अकस्मात् उसके ऊपर दीवाल गिर पड़ी जिससे वह वहां ही मर गया। हा हा ! अब मैं उसके बिना आधार रहित हो गई हूं, तो मेरा कल्याण कैसे होगा ? इस प्रकार के दुःख समूह से दुःखी होकर मैं पुकार करती हूं।" राजा ने कहा—"हे मात ! तेरा पुत्र मर गया उसका तू खेद मत कर मैं तेरा पालन पोषण कर तुझे सब प्रकार सन्तुष्ट रक्खूंगा।" इस प्रकार दया से राजा ने उस वृद्धा स्त्री को संतोषित करके विदा किया।

अब राजा ने उस देवदत्त सेठ को बुलवा कर कोप सहित कहा—'हे दुरात्मन् ! तूने ऐसी जीर्ण दीवार क्यों करवाई ? कि जिसके गिरने से बेचारा चोर मर गया।' सेठ भय से काँपता हुआ कहने लगा—'हे स्वामिन् ! मेरा इसमें क्या अपराध है ? कारण कि मैंने तो पैसा खर्च करके सब सामग्री कारीगर को तैयार करवादी थी और उसके कहे अनुसार मजूरी के दाम भी उसको दे दिये थे। इसलिये यदि आप सत्यता से विचार करेंगे तो इसमें उसका ही दोष है।' सेठ का ऐसा उत्तर सुन कर तुरन्त ही कारीगर को बुलवा कर क्रोध पूर्वक राजा ने

लगा—'नगर में सब लोगों के जाने आने के मार्ग में तुम क्यों घोड़े को विविध चाल सिखा रहे थे ?' जमाई कहने लगा—'हे राजन् ! इसमें मेरा लेशमात्र भी अपराध नहीं है, परन्तु मुझको ऐसी बुद्धि देने वाले विधाता का ही दोष है।' यह सुन कर राजा सभा के मनुष्यों से कहने लगा—'विधाता को भी बलात्कार से बाँध कर यहाँ हाज़िर करो, कारण कि मैं किसी का भी अपराध सहन करने वाला नहीं हूँ।' उस समय धूर्त्त सभासद कहने लगे—'हे देव ! आपकी कठोर आज्ञा से भय पाकर अपराधी होने से वह उसी समय अवश्य भाग गया मालूम होता है। परन्तु प्रचण्ड प्रताप वाले ऐसे आपके पास से भाग करके भी वह विधाता सूर्य से सियार की जैसे कितना दूर जायगा ? जहाँ तहाँ से भी बाँध कर के हम यहाँ हाज़िर करेंगे।' इस प्रकार के झूठे होने पर सत्य वाले जैसे उन धूर्त्त लोगों के वचनों से हृदय में खुश होता हुआ वह निर्विचार राजा सभा विसर्जन करके अपने को न्याय तत्पर मानता हुआ भोजन के लिये अपने आवास में चला गया।

देवदत्त वणिक् इस देश के अद्भुत न्यायमार्ग की कुशलता को देख कर हृदय में अत्यन्त आश्चर्य पाता हुआ विचार करने लगा—'अहो ! निर्विचार राजा

लगा—'नगर में सब लोगों के जाने आने के मार्ग में तुम क्यों घोड़े को विविध चाल सिखा रहे थे ?' जमाई कहने लगा—'हे राजन् ! इसमें मेरा लेशमात्र भी अपराध नहीं है, परन्तु मुझको ऐसी बुद्धि देने वाले विधाता का ही दोष है।' यह सुन कर राजा सभा के मनुष्यों से कहने लगा—'विधाता को भी बलात्कार से बाँध कर यहाँ हाज़िर करो, कारण कि मैं किसी का भी अपराध सहन करने वाला नहीं हूं।' उस समय धूर्त्त सभासद कहने लगे—'हे देव ! आपकी कठोर आज्ञा से भय पाकर अपराधी होने से वह उसी समय अवश्य भाग गया मालूम होता है। परन्तु प्रचण्ड प्रताप वाले ऐसे आपके पास से भाग करके भी वह विधाता नृप से सियार की जैसे कितना दूर जायगा ? जहाँ तहाँ से भी बाँध कर के हम यहाँ हाज़िर करेंगे।' इस प्रकार के झूठे होने पर सत्य वाले जैसे उन धूर्त्त लोगों के वचनों से हृदय में खुश होता हुआ वह निर्विचार राजा सभा विसर्जन करके अपने को न्याय तत्पर मानता हुआ भोजन के लिये अपने आवास में चला गया।

देवदत्त वणिक् इस देश के अद्भुत न्यायमार्ग की कुशलता को देख कर हृदय में अत्यन्त आश्चर्य पाता हुआ विचार करने लगा—'अहो! निर्विचार राजा

तलाश कर शीघ्र ही हमको वह वापिस दे दें कि जिससे बाहर किसी को मालूम न हो।' देवदिन्न कहने लगा—'हे भद्र ! कभी काल के प्रभाव से सूर्य पश्चिम दिशा में उदय हो और समुद्र अपनी मर्यादा को छोड़ दे परन्तु हमारे में से कोई भी मनुष्य दूसरे की रमणीय वस्तु में भी अपना हाथ नहीं डालता, इसलिये अपने घर ही जाकर उसको तलाश करो।' पीछे परिव्राजिका स्वयं आकर के, देवदिन्न को फिर कहने लगी—'हे श्रेष्ठिन् ! थाल आपके ही मकान में कहीं आया हुआ है, इसलिये मैं स्नेहाचार से माँगती हूँ आप मुझे वह दे दें। 'जहाँ खाया वहाँ ही भाजन तोड़ना' ऐसा मत करो। अब, यदि इस प्रकार सरलता से माँगने पर भी आप नहीं देंगे तो राजबल से दण्डयुक्तियों के द्वारा मुझे लेना पड़ेगा।' उसके कपट को नहीं जानता हुआ सरल देवदिन्न कहने लगा—'हे वाचाल ! ऐसा न्यूनाधिक वृथा क्यों बोलती है ? क्या जातिवन्त सुवर्ण में कभी श्यामता आई देखी है ? हमारे परिजन को ऐसा काम करना कभी योग्य नहीं है, इसलिये तुम्हारे घर में ही कहीं वह थाल होगा, वहाँ शीघ्र ही जाकर अपने परिवार को पूछो। अपना पृष्ठ भाग अपने से शुद्ध नहीं हो सकता ऐसे अपना मनःकल्पित सत्य नहीं होता, इस प्रकार जानता हुआ तुम्हारे जैसा सुज्ञ मनुष्य दूसरे पर सहसा

तलाश कर शीघ्र ही हमको वह वापिस दे दें कि जिससे बाहर किसी को मालूम न हो।' देवदिन्न कहने लगा— 'हे भद्र! कभी काल के प्रभाव से सूर्य पश्चिम दिशा में उदय हो और समुद्र अपनी मर्यादा को छोड़ दे परन्तु हमारे में से कोई भी मनुष्य दूसरे की रमणीय वस्तु में भी अपना हाथ नहीं डालता, इसलिये अपने घर ही जाकर उसको तलाश करो।' पीछे परिव्राजिका स्वयं आकर के देवदिन्न को फिर कहने लगी—'हे श्रेष्ठिन्! थाल आपके ही मकान में कहीं आया हुआ है, इसलिये मैं स्नेहाचार से माँगती हूँ आप मुझे वह दे दें। 'जहाँ खाया वहाँ ही भाजन तोड़ना' ऐसा मत करो। अब, यदि इस प्रकार सरलता से माँगने पर भी आप नहीं देंगे तो राजबल से दण्डयुक्तियों के द्वारा मुझे लेना पड़ेगा।' उसके कपट को नहीं जानता हुआ सरल देवदिन्न कहने लगा—'हे वाचाल! ऐसा न्यूनाधिक वृथा क्यो बोलती है? क्या जातिवन्त सुवर्ण में कभी श्यामता आई देखी है? हमारे परिजन को ऐसा काम करना कभी योग्य नहीं है, इसलिये तुम्हारे घर में ही कहीं वह थाल होगा. वहाँ शीघ्र ही जाकर अपने परिवार को पूछो। अपना पृष्ठ भाग अपने से शुद्ध नहीं हो सकता ऐसे अपना मनःकल्पित सत्य नहीं होता, इस प्रकार जानता हुआ तुम्हारे जैसा सुज्ञ मनुष्य दूसरे पर सहसा

तलाश कर शीघ्र ही हमको वह वापिस दे दें कि जिससे बाहर किसी को मालूम न हो।' देवदिन्न कहने लगा—'हे भद्र! कभी काल के प्रभाव से सूर्य पश्चिम दिशा में उदय हो और समुद्र अपनी मर्यादा को छोड़ दे परन्तु हमारे में से कोई भी मनुष्य दूसरे की रमणीय वस्तु में भी अपना हाथ नहीं डालता, इसलिये अपने घर ही जाकर उसकी तलाश करो।' पीछे परिव्राजिका स्वयं आकर के देवदिन्न को फिर कहने लगी—'हे श्रेष्ठिन्! थाल आपके ही मकान में कहीं आया हुआ है, इसलिये मैं स्नेहाचार से माँगती हूँ आप मुझे वह दे दें। 'जहाँ खाया वहाँ ही भाजन तोड़ना' ऐसा मत करो। अब, यदि इस प्रकार सरलता से माँगने पर भी आप नहीं देंगे तो राजबल से दण्डयुक्तियों के द्वारा मुझे लेना पड़ेगा।' उसके कपट को नहीं जानता हुआ सरल देवदिन्न कहने लगा—'हे वाचाल! ऐसा न्यूनाधिक वृथा क्यो बोलती है? क्या जातिवन्त सुवर्ण में कभी श्यामता आई देखी है? हमारे परिजन को ऐसा काम करना कभी योग्य नहीं है, इसलिये तुम्हारे घर में ही कहीं वह थाल होगा. वहाँ शीघ्र ही जाकर अपने परिवार को पूछो। अपना पृष्ठ भाग अपने से शुद्ध नहीं हो सकता ऐसे अपना मनःकल्पित सत्य नहीं होता, इस प्रकार जानता हुआ तुम्हारे जैसा शुद्ध मनुष्य दूसरे पर सहसा

तलाश कर शीघ्र ही हमको वह वापिस दे दें कि जिससे बाहर किसी को मालूम न हो।' देवदिन्न कहने लगा—'हे भद्र! कभी काल के प्रभाव से सूर्य पश्चिम दिशा में उदय हो और समुद्र अपनी मर्यादा को छोड़ दे परन्तु हमारे में से कोई भी मनुष्य दूसरे की रमणीय वस्तु में भी अपना हाथ नहीं डालता, इसलिये अपने घर ही जाकर उसको तलाश करो।' पीछे परिव्राजिका स्वयं आकर के, देवदिन्न को फिर कहने लगी—'हे श्रेष्ठिन्! थाल आपके ही मकान में कहीं आया हुआ है, इसलिये मैं स्नेहाचार से माँगती हूँ आप मुझे वह दे दें। 'जहाँ खाया वहाँ ही भाजन तोड़ना' ऐसा मत करो। अब, यदि इस प्रकार सरलता से माँगने पर भी आप नहीं देंगे तो राजबल से दण्डयुक्तियों के द्वारा मुझे लेना पड़ेगा।' उसके कपट को नहीं जानता हुआ सरल देवदिन्न कहने लगा—'हे वाचाल! ऐसा न्यूनाधिक वृथा क्यों बोलती है? क्या जातिवन्त सुवर्ण में कभी श्यामता आई देखी है? हमारे परिजन को ऐसा काम करना कभी योग्य नहीं है, इसलिये तुम्हारे घर में ही कहीं वह थाल होगा, वहाँ शीघ्र ही जाकर अपने परिवार को पूछो। अपना पृष्ठ भाग अपने से शुद्ध नहीं हो सकता ऐसे अपना मनःकल्पित सत्य नहीं होता, इस प्रकार जानता हुआ तुम्हारे जैसा सुज्ञ मनुष्य दूसरे पर सहसा

मन में इस प्रकार विचार करने लगा—'धन प्राप्त करने के लिये बड़े मनोरथ से यहाँ आते ही अहा! विधाता ने मेरी कैसी दुःखी अवस्था कर दी? मनुष्य कई प्रकार की धारणा करता है उसको विधाता उससे अन्यथा कर देता है। आभूषण पहरने के लिये विंधे हुए दरिद्रियों के कान में आभूषण के स्थान पर मैल भरा रहता है। शरण रहित, दीन और पराधीन ऐसे मेरा जीवन भी यहाँ ही जैसे मेरा सर्वस्व गया वैसे जायगा। इस जगत् मे ऐसा कोई कृष्ण चतुर्दशी का जन्मा हुआ नहीं है कि जो मुझे इस दुष्ट स्त्री के दास-कर्म से मुक्त करे। तो भी यह मेरा यथार्थ वृत्तान्त किसी प्रयत्न से लिख कर मेरे पिता के पास भेजूं। पीछे स्वदेश जाने वाले किसी सार्थवाह के द्वारा उसने अपने हाथ की निशानी वाला लेख पिता के पास भेजा। कुछ दिन के बाद प्रियंगुसेठ को वह लेख मिला। अपने पुत्र की दुःखित स्थिति बाँच कर वह बड़े स्वर से रोने लगा।

इधर देवदिन्न ने जिस दिन विदेश के लिए प्रस्थान किया था, उसी दिन प्रियंगु सेठ अपनी पुत्रवधू सरस्वती को स्नेह से अपने घर ले आया था। आज अकस्मात् अपने ससुर को दुःखाकुल देखकर 'आज कुछ नवीन है' ऐसी शंका रूप शल्य से वह आकुल व्याकुल हो गई।

ही मिलता है।' पीछे अपने बुद्धिबल से अत्यन्त उत्साह वाली वहू को देखकर, अपने पुत्र को छुड़ाने की इच्छा से, वहाँ जाने के लिये सेठ ने आज्ञा दे दी।

अब श्वसुर के दिए हुए पुरुष-वेष को धारण कर, अनेक प्रकार के किराने और नवीन परिवार सहित वह सती, शुभ दिन मे शुभ शकुन होने पर जहाज में बैठकर चली। कितने ही दिनों बाद वह अन्यायपुर नगर में आ पहुंची और अपूर्व भेट से वहाँ के राजा को सन्तुष्ट करके अपने विश्वासपात्र मनुष्यों से बड़ा सम्मान पाती हुई एक किराये लिए हुए मकान में रहने लगी। 'कोई बडे सेठ का सोमदत्त नाम का चतुर पुत्र अयोध्या से यहाँ आया है।' इस प्रकार वह लोगों में प्रसिद्ध हुई। एक दिन उसी लोभी परिव्राजिका ने पहले की तरह उसको आदर पूर्वक भोजन का आमन्त्रण दिया; परन्तु जीमने जाते समय उसने अपने मकान में गुप्त तलाश रखने वाले सात मनुष्यों को कुछ शिक्षा देकर रख दिया। दुष्ट परिव्राजिका ने अपने मनुष्यों के द्वारा एक सुवर्ण कुड़छी वहाँ एकान्त में किसी ठिकाने रखवादी। यहाँ तलाश रखने वाले मनुष्यों ने उसे लेकर सरस्वती के कहे अनुसार परिव्राजिका के घर में एकान्त में किसी वृक्ष के मूल में गाड़ दी। अब क्रम से सुवर्ण कुड़छी के लिये परिव्राजिका ने विवाद किया

के लिये तू यहाँ ही रह । मैं जब मेरे नगर जाऊँगा तब तुझको तेरे देश में लेता जाऊँगा।' ऐसा कह कर देवदिन्न को अपने पास रक्खा। अपने देश में लौट जाने की इच्छा से वह मन में कुछ खुशी हुआ और उसके अनुसार वहाँ रह कर सब काम काज करने लगा। लोग कहने लगे कि—'अहो! इस श्रेष्ठिपुत्र सोमदत्त की कैसी अद्भुत कुशलता है? यह महा भाग्यशाली है कि जगत् को ठगनेवाली इस परिव्राजिका को भी उसने ठग लिया।' इस प्रकार सर्वत्र लोगों से प्रशंसा पाती हुई सरस्वती ने, अपनी इष्ट सिद्धि हो जाने से, लाये हुए किराने को बेच कर बहुत मूल्यवान् मणि, मोती आदि वस्तुओं से अपना जहाज़ भरा। पीछे उसने अपने देश जाने की इच्छा से राजा के पास बिदाई माँगी। उस समय दान और सन्मान पूर्वक उसका बहुत सत्कार करके राजा ने कूटबुद्धि को उसके पास से छुड़वाया।

पीछे वहाँ के श्रेष्ठियों का यथाविधि दान सन्मान से सत्कार करके सरस्वती अपने परिवार के साथ जहाज़ में बैठ कर अपने देश की तरफ़ चली। एक दिन मार्ग में अपने पुरुष वेष को त्याग कर और स्त्री के उचित दिव्य वस्त्रालंकार धारण करके, सरस्वती देवदिन्न से कहने लगी—'हे प्रभो! मुझको अभी आप पहचान सकते हैं?'

जइ वि गुरुवल्लिगहणे
भग्गकम्मो कहवि केसरी जाओ।
तह वि हु मत्तगयाणं
पुणो वि कुम्भत्थलं दलइ ॥

"कदाचित् बड़ी लताओं के गहन कुञ्ज में केसरीसिंह भग्न पराक्रम होकर गिर गया हो तो भी उसमें से निकल कर मदोन्मत्त हाथियों के कुम्भस्थल को वह चूर्ण करता है।" जिससे सर्वोत्तम गुण वाले और सब कला में कुशल होने पर आप उसको जीत न सके तो क्या इतने से ही आप में अज्ञानपना आ गया ? कहा है कि—

यदि नाम सर्षपकणं
शक्नोति करी करणे नादातुम्।
इयतापि तस्य किं न तु
पराक्रमग्लानिरिह जाता ॥

"कभी सर्षव का दाना हाथी अपनी सूंड़ से न ले सके तो क्या इतने से ही उसके पराक्रम में हीनता आ गई ?" और आप जिस दुष्टा को न जीत सके. उस दुष्टा को मैंने जीत लिया. तो क्या सर्वोत्तम ऐसे आपसे मेरे में अधिकता आ गई ? कहा है कि—

जइ वि गुरुवल्लिगहणे
भग्गकम्मो कहवि केसरी जाओ।
तह वि हु मत्तगयाणं
पुणो वि कुम्भत्थलं दलइ ॥

"कदाचित् वड़ी लताओं के गहन कुञ्ज मे केसरीसिंह भग्न पराक्रम होकर गिर गया हो तो भी उसमें से निकल कर मदोन्मत्त हाथियो के कुम्भस्थल को वह चूर्ण करता है।" जिससे सर्वोत्तम गुण वाले और सव कला में कुशल होने पर आप उसको जीत न सके तो क्या इतने से ही आप में अज्ञानपना आ गया ? कहा है कि—

यदि नाम सर्षपकणं
शक्नोति करी करण नादातुम्।
इयतापि तस्य किं न तु
पराक्रमग्लानिरिह जाता ॥

"कभी सर्षव का दाना हाथी अपनी सूंड़ से न ले सके तो क्या इतने से ही उसके पराक्रम में हीनता आ गई ?" और आप जिस दुष्टा को न जीत सके, उस दुष्टा को मैंने जीत लिया, तो क्या सर्वोत्तम ऐसे आपसे मेरे में अधिकता आ गई ? कहा है कि—

जइ वि गुरुवल्लिगहणे
भग्गकम्मो कहवि केसरी जाओ।
तह वि हु मत्तगयाणं
पुणो वि कुम्भत्थलं दलइ॥

"कदाचित् बड़ी लताओं के गहन कुञ्ज मे केसरीसिह भग्न पराक्रम होकर गिर गया हो तो भी उसमें से निकल कर मदोन्मत्त हाथियों के कुम्भस्थल को वह चूर्ण करता है।' जिससे सर्वोत्तम गुण वाले और सब कला में कुशल होने पर आप उसको जीत न सके तो क्या इतने से ही आप में अज्ञानपना आ गया ? कहा है कि—

यदि नाम सर्षपकणं
शक्नोति करी करणे नादातुम्।
इयतापि तस्य किं न तु
पराक्रमग्लानिरिह जाता॥

"कभी सर्षव का दाना हाथी अपनी सूंड़ मे न ले सके तो क्या इतने से ही उसके पराक्रम में हीनता आ गई ?" और आप जिस दुष्ट को न जीत सके, उस दुष्ट को मैंने जीत लिया, तो क्या सर्वोत्तम ऐसे आपसे मेरे में अधिकता आ गई ? कहा है कि—

जइ वि गुरूवल्लिगहणे
भग्गकम्मो कहवि केसरी जाओ।
तह वि हु मत्तगयाणं
पुणो वि कुम्भत्थलं दलइ ॥

"कदाचित् बड़ी लताओं के गहन कुञ्ज मे केसरीसिंह भग्न पराक्रम होकर गिर गया हो तो भी उसमें से निकल कर मदोन्मत्त हाथियो के कुम्भस्थल को वह चूर्ण करता है।" जिससे सर्वोत्तम गुण वाले और सब कला में कुशल होने पर आप उसको जीत न सके तो क्या इतने से ही आप में अज्ञानपना आ गया ? कहा है कि—

यदि नाम सर्षपकणं
शक्नोति करी करणे नादातुम् ।
इयतापि तस्य किं न तु
पराक्रमग्लानिरिह जाता ॥

"कभी सर्षव का दाना हाथी अपनी सूंड से न ले सके तो क्या इतने से ही उसके पराक्रम में हीनता आ गई ?" और आप जिस दुष्टा को न जीत सके, उस दुष्टा को मैंने जीत लिया, तो क्या सर्वोत्तम ऐसे आपसे मेरे में अधिकता आ गई ? कहा है कि—

छत्र, चामर, वाजिंत्र और पट्टहस्ती आदि सेठ को दिखवाये। उसके बाद राजा की कृपा से प्राप्त हुए वे सब लेकर सेठ अपने स्वजन श्रीमन्तों के साथ बड़ा आडम्बर पूर्वक अपने पुत्र के सन्मुख गया। वहाँ स्नेह से नमन करते हुए पुत्र को आलिंगन करके और अपने वचन को सिद्ध करने वाली विकस्वर मुखकमल वाली और दूर से विनयपूर्वक नमन करती हुई पुत्र-वधू को स्नेहदृष्टि से देख करके वह सेठ संसार सुख के सर्वस्व का अनुभव अपने मन में करने लगा। अब बाजा बजाने वालों से अनेक प्रकार के वाजित्र बजवाते हुए, लीलापूर्वक वारांगनाओं का नृत्य कराते हुए, पीछे मंगल गीत गाने वाली कुलीन स्त्रियों से गीत गवाते हुए, चौतरफ भाट चारणों के द्वारा जय २ शब्दो से प्रशंसा कराते हुए दीन दुःखी याचकों पर सुवर्ण और वस्त्रो को मेघ की जैसे बरसाते हुए, और पूर्व भव के पुण्योदय से लोगों से प्रशंसा पाते हुए अपने पुत्र के मस्तक पर छत्र धारण कर और वधू के साथ हाथी पर बिठला कर बड़े आडम्बर सहित हर्षित होते हुए सेठ ने नगर में प्रवेश करवाया। पीछे घर आये हुए और प्रिया सहित प्रणाम करते हुए देवदिन्न पर चिरकाल के वियोग से दुःखी हुई माता ने हर्षाश्रु का सिंचन किया। प्रियंगु और सुन्दर सेठ के घर सत्पुत्र के जन्म की जैसे आठ दिन तक आनन्द पूर्वक वर्धापन महोत्सव होता रहा।

गुणवती कान्ते ! इस प्रकार अपने आप प्रकाशित होकर
ता युक्त प्रेमी का अभी अकस्मात् तू क्यों त्याग करती
? हे प्रिये ' यह तेरा विचार प्रशंसनीय है, परन्तु तपश्च-
तो चतुर्थ आश्रम में उचित है। तांबूल में जैसे शक्कर का
यों योग्य नहीं है, वैसे यह भी यौवनावस्था में योग्य
ी है। हे प्रिये ! प्रायः सब तीर्थकर और तत्वज्ञ पुरुषों
भी यौवनावस्था में विषय-सुख भोग करके वृद्धावस्था
व्रत लिया है। इसलिये अभी स्वेच्छा पूर्वक भोग भोग-
र वृद्धावस्था में अपने दोनों एक साथ व्रत लेंगे।' इस
कार पति के अनुरोध से सरस्वती अपने तत्वज्ञ होने पर
ि के भोगफल कर्म को भोगने के लिये गृहस्थाश्रम में
ही। परन्तु संसार में रहने पर भी सुधासदृश सद्बोध
उस पतिव्रता ने अपने पति को प्रतिबोध देकर उसको
ुद्ध आर्हत धर्म सिखलाया, जिससे क्रमशः वह हृदय का
ुद्ध और श्रेष्ठतर परिणाम के योग से आवश्यक क्रिया
उन्नत होकर निश्चय श्रावक हुआ। कहा है कि—

'सामग्गि अभावे वि हु वसणे
वि सुहे वि तहा कुसंगेवि।
जं न हायइ धम्मो निच्छयओ
जाण तं सड्ढं॥'

अनेक प्रकार के दुःखों से दुःखी होकर नर बहुत काल तक संसार में परिभ्रमण करेगा।

पिता की मृत्यु पीछे शोकसागर में निमग्न हुए देवदिन्न ने परलोकवासी पिता की उत्तर क्रिया की। उसके बाद स्वजनों ने मिल कर उसका शोक निवारण किया और प्रियंगुसेठ के स्थान पर देवदिन्न को स्थापन कर उसके पर कुटुम्ब के भार का आरोपण किया। वह पाप भीरु, दाक्षिण्यवान्, सत्यशील, दया का भण्डार, शुद्ध व्यवहार में तत्पर, देवगुरु की भक्ति करने वाला, सर्वज्ञप्रणीत धर्म से श्रद्धा वाला, निष्कपट हृदय वाला, सद्बुद्धि वाला और क्रम से बढ़ती हुई बड़ी सम्पत्ति वाला हुआ। धर्महीन पिता से उत्पन्न हुआ ऐसा धर्मयुक्त देवदिन्न को देखकर लोग कहने लगे—'अहो! विषवृक्ष से यह अमृत जैसा स्वादिष्ट फल उत्पन्न हुआ!' समान स्नेह और शीलवाले देवदिन्न और सरस्वती को सुखपूर्वक अनेक प्रकार के दिव्य भोग भोगते हुए रूप और सौभाग्य से सुशोभित तथा विनययुक्त मानो शरीरधारी पुरुषार्थ हो ऐसे चार पुत्र हुए।

एक दिन नगरवासियों के पुण्योदय से आकर्षित होकर सम्यक्क्रिया और ज्ञानरूप धनवाले श्री युगन्धराचार्य वहाँ पधारे। जैसे प्यासे मनुष्य निर्मल जल से भरे हुए सरोवर

के पास जाते हैं, वैसे पुण्यवन्त नगरवासी उत्साह से उनके पास आये। श्रद्धालु हृदयवाला और चतुर देवदिन्न भी स्त्री के साथ उनके वचनामृत का पान करने को आया। कषायरूप दाह को शान्ति, आशारूप तृषा का नाश और पापरूप मल का प्रक्षालन करने के हेतु से जंगम भावतीर्थ रूप आचार्य ने इस प्रकार उपदेश देना प्रारम्भ किया— 'स्वर्ग और मोक्ष के सुख देने में साक्षी (गवाह) रूप ऐसा दयामय शुद्ध धर्म, भव से डरने वाले सुज्ञ मनुष्यों को सब प्रकार से आराधन करना चाहिये। जो कार्य करने में दूसरे प्राणियों को दुःख हो ऐसे कार्य मन वचन और काया से कुशलार्थी मनुष्यों को कभी नहीं करना चाहिये। दूसरे का वध बन्धन आदि पाप एक बार भी करने में आवे तो उसका जघन्य विपाक (फल) दस गुणा होता है और तीव्र या तीव्रतर द्वेषरूप परिणाम के वश से किया हो तो उसका विपाक क्रम से बढ़ता २ असंख्य गुणा अधिक होता है। आगम में भी कहा है कि—

'वहमारणअब्भक्खाण—
दाणपरधणविलोवणाइणं।
सव्वजहन्नो उदओ
दसगुणीओ इक्कसिकयाणं॥'

'तिव्वयरे उ पएसे सयगुणिओ
सयसहस्सकोडिगुणो ।
कोडाकोडिगुणो वा हुज्ज
विवागो बहुयरो वा ॥'

'वध, मारण, मिथ्या अपराध देना, और दूसरे की थापन रख लेना आदि पाप एक वार करने से उसका सवसे जघन्य उदय दश गुणा होता है। परन्तु तीव्रतर द्वेष के करने से उसका विपाक सौ गुणा, लाख गुणा, कोटि गुणा और कोटा कोटी गुणा होता है या उससे भी अधिक गुणा होता है।' दूसरे पर, द्वेष से करने में आया हुआ वधादि पाप तो दूर रहा, परन्तु कपटगर्भित धर्मोपदेश भी आगे महा दुःखकारक होता है। जैसे छल कपट गर्भित धर्मोपदेश भी, अपनी भाभी को दुःख का हेतु हो जाने से, धनश्री को अन्त में दुःखकारक हुआ। इसका दृष्टान्त इस प्रकार है—

अनेक श्रीमंत श्रावकों से व्याप्त ऐसा वसंतपुर नाम के नगर में शुद्ध व्यवहार वाला, वाणी में कुशल, त्यागी, भोगी, बुद्धि का भण्डार, समस्त दुष्कर्मों से विराम पाया हुआ और धन धान्य की समृद्धि वाला परम श्रावक

-वती स्त्री के ही गोद में होता है।' ऐसे अर्थ वाला श्लोक सुन कर, एकान्त सुख स्वाद होने पर भी, उस समय से पुत्र न होने के कारण उनका मन अतिशय दुखी रहने लगा। शक्कर के चूर्ण के स्वाद में आई हुई कंकरी जैसे दुःसह लगती है वैसे ही वह दुःख उनको, अत्यन्त सुख के भोगों में भी असह्य हो पड़ा। पुत्र की प्राप्ति के लिये अनेक प्रकार के देव देवियों की पूजा और भोग आदि धरने का अन्य मतावलम्बियों ने वारंवार उपदेश दिया परन्तु शुद्ध जैनपन्थ से सम्यक्त्व शुद्ध होने के कारण, उनका मेरु समान निश्चल मन लेशमात्र भी चलायमान न हुआ। तीर्थंकर की भक्ति, तप तथा दीन दुःखीजनों को दान आदि सत्कार्यों से वे क्रम से अपने पूर्व के अन्तराय कर्म का क्षय करने लगे।

एक दिन जिनेश्वर भगवंत की पूजा करके उनके आगे अरिहंत पद के ध्यान में लीन होकर कायोत्सर्ग से रहा हुआ और अर्हद्भक्ति के प्रभाव से जिसके अशुभ कर्म क्षय हो गये हैं ऐसा उस सेठ को 'अब तेरी अभीष्ट सिद्धि समीप है।' इस प्रकार स्पष्ट बोलता हुआ कोई देव उसके सत्कर्मों से प्रेरित होकर वहाँ आया और पके हुए दो आम्रफल और एक उसकी गुटली तुष्ट होकर अर्पण की। उन वस्तुओं को देख कर सेठ हर्षित होना

दुःखाकुल होकर विलाप करती हुई धनश्री इस प्रकार विचार करने लगी—'अँगूठे पर रखी हुई अग्निज्वाला की तरह अत्यन्त दुःसह बालवैधव्य की वेदना मुझे किस प्रकार सहन करनी ? इसलिये ज्वाला से व्याप्त अग्नि में आज ही इस शरीर को होम कर, इस बड़े दुःख की मैं एक साथ समाप्ति करूँ।' उस समय शोकार्त्त हो कर आंखों में से अश्रुपात करते हुए स्वजनों के सामने वह अपने पिता को इस प्रकार कहने लगी—'हे तात ! आज अभी ही प्रसन्न होकर मुझको काष्ठ मँगवा दो कि जिससे मैं अग्नि में जल मरूँ, कारण कि पति के मार्ग का अनुसरण करने में सतियों को लाभ ही है।' पीछे पिता अपनी गोद में उसको बैठला कर गद्गद् शब्दों से कहने लगा—'हे वत्से ! तत्त्वज्ञ (समझदार) मनुष्यों को ऐसा साहस करना योग्य नहीं है. ऐसा मनुष्य जन्म और शुभज्ञान. व्यर्थ कैसे खो दिया जाय ? हे मुग्धे ! मनुष्य भव में महान् कर्मों का क्षय एक क्षण में भी हो सकता है।' कहा है कि—

'जं अन्नाणी कम्मं खवेइ बहुआहिं वासकोडीहिं।
तं नाणी तिहिगुत्तो खवेइ उसासमित्तेण॥

'अज्ञानी जिस कर्म को बहुत करोड़ वर्षों में क्षय करता

है, उस कर्म को ज्ञानी मनुष्य तीन गुप्ति सहित एक श्वास मात्र में क्षय कर सकता है।' 'हे वत्से ! अग्निप्रवेशादि अति दुःसह कष्टों से भी प्राणी जो शुभ आशय वाला हो तो केवल व्यन्तर गति को पाता है।' आगम में भी कहा है कि—

'रज्जुग्गह-विसभक्खण-जल,
जलणपवेसतिन्हछुहदुहिओ।
गिरिसिलपडणाउ मया,
सुहभावा हुंति वन्तरिया ॥

'रस्सी से गले में फाँसी खाये, विषभक्षण करे, जल या अग्नि में प्रवेश करे, तृषा या क्षुधा से मरे और पर्वत के शिखर पर से झम्पापात करे उस समय यदि शुभभाव रहे तो प्राणी व्यन्तर होता है।' जैसे मन्त्रवादी लोग पात्र में विष को नियमित (आधीन) करके पीछे मन्त्र के प्रयोग से उसको मारता है, ऐसे तप रूप अग्नि से आत्मा को वश करके सुज्ञ पुरुष शरीर को अंकुश में रखता है। हे शुभे ! अग्नि के दाह से भयभीत हुई आत्मा के तत्काल उड़ जाने बाद निर्जीव शरीर को जलाने से क्या फायदा ?
पा॰ से स्त्रियों का जो पति के मार्ग का अनुसरण

है, वह भी व्यवहार मात्र से है. वस्तुतः तो उसका परिणाम कुछ नहीं है। स्नेह के साथ मरते हुए जीव भी कर्म की परवशता से परलोक में भिन्न २ गति पाते हैं अर्थात् एक जगह उत्पन्न नहीं होते। कहा है कि—

'रुदता कुत एव सा पुनर्न.
शुचा नानुमृतेन लभ्यते।
परलोकजुषां स्वकर्मभि-र्गतयो,
भिन्न यथा हि देहिनाम् ॥'

'वह कान्ता अब रुदन करने से, शोक करने से या उसके पीछे मर जाने से भी कहीं मिलने वाली नहीं है. कारण कि कर्म वश से परलोकवासी प्राणियों की भिन्न २ गति होती है।' 'इसलिये हे वत्से! इस बाल मरण के अध्यवसाय को हृदय से छोड़ कर श्रद्धा पूर्वक सब दुःखों का औषधरूप ऐसा आर्हत धर्म का आचरण कर और यथा योग्य दान देती हुई, उज्वल शीलव्रत धारण करती हुई, शक्ति के अनुसार तप करती हुई और शुभ भावना रखती हुई सुख पूर्वक यहाँ रहे। यहाँ अपने घर निरन्तर रहने से और अधिक परिचय से तेरी अवज्ञा होगी ऐसी लेशमात्र भी शंका मत रखना। कारण कि तू जो केवी

अब आस्ते २ धनश्री ने शोक को छोड़ दिया और वह हमेशा यथायोग्य सब कार्यों में अपनी भाभियों को लगाने लगी। भौजाइएँ भी श्रेष्ठकुल और शीलवती होने से उसको निरन्तर अपनी माता समान मान कर उसके ऊपर अत्यन्त स्नेह भाव रखने लगीं। वे तीनों प्रतिक्रमणादि करके तत्त्व की जिज्ञासा से परस्पर हमेशा धर्मगोष्ठी करती थीं।

अब दीन दुःखीजनों को अनुकंपादान, सुपात्रों को निर्दोष और भूषण रूप श्रद्धापूर्वक दान तथा धर्मस्थान में जाते आते समय याचकों को उचितदान, इस प्रकार अपनी इच्छानुकूल दान देती हुई धनश्री ने सर्वत्र लोक में प्रशंसा पायी। एक दिन मनुष्यों के मुख से ननंद की विशेष प्रशंसा सुनकर स्नेहवाली होने पर भी दोनों भौजाइयें मन में कुछ खेद पूर्वक विचारने लगी—'ननंद का इस घर के साथ ऐसा क्या सम्बन्ध है कि जो यह धन का इतना खर्च करती है ?' पीछे अपने घर के समीप रहने वाली स्त्रियों के आगे भी कुछ ईर्ष्या से ऊँच नीच तिरस्कार युक्त वचन वे बोलने लगीं।

अपनी भाभियों की परम्परा से ये बातें सुनकर वह खेद पूर्वक विचार करने लगी—'प्रायः सब जगह भाभिएं ऐसी ही होती है, उनके वचनों से दुःखी होकर मन में

अब आस्ते २ धनश्री ने शोक को छोड़ दिया और
ह हमेशा यथायोग्य सब कार्यों में अपनी भाभियों को
गाने लगी। भौजाइएँ भी श्रेष्ठकुल और शीलवती होने
से उसको निरन्तर अपनी माता समान मान कर उसके
ऊपर अत्यन्त स्नेह भाव रखने लगीं। वे तीनों प्रतिक्रम-
णादि करके तत्त्व की जिज्ञासा से परस्पर हमेशा धर्मगोष्ठी
करती थी।

अब दीन दुःखीजनों को अनुकंपादान, सुपात्रों को
निर्दोष और भूषण रूप श्रद्धापूर्वक दान तथा धर्मस्थान
में जाते आते समय याचकों को उचितदान, इस प्रकार
अपनी इच्छानुकूल दान देती हुई धनश्री ने सर्वत्र लोक में
प्रशंसा पायी। एक दिन मनुष्यों के मुख से ननंद की विशेष
प्रशंसा सुनकर स्नेहवाली होने पर भी दोनों भौजाइयें मन
में कुछ खेद पूर्वक विचारने लगी—'ननंद का इस घर के
साथ ऐसा क्या सम्बन्ध है कि जो यह धन का इतना खर्च
करती है?' पीछे अपने घर के समीप रहने वाली स्त्रियों
के आगे भी कुछ ईर्ष्या से ऊँच नीच तिरस्कार युक्त वचन
वे बोलने लगीं।

अपनी भाभियों की परम्परा से ये बातें सुनकर वह
खेद पूर्वक विचार करने लगी—'प्रायः सब जगह भाभिएँ
ऐसी ही होती है, उनके वचनों से दुःखी होकर मन में

अब आस्ते २ धनश्री ने शोक को छोड़ दिया और वह हमेशा यथायोग्य सब कार्यों में अपनी भाभियों को लगाने लगी। भौजाइएं भी श्रेष्ठकुल और शीलवती होने से उसको निरन्तर अपनी माता समान मान कर उसके ऊपर अत्यन्त स्नेह भाव रखने लगीं। वे तीनों प्रतिक्रमणादि करके तत्त्व की जिज्ञासा से परस्पर हमेशा धर्मगोष्ठी करती थी।

अब दीन दुःखीजनों को अनुकंपादान, सुपात्रों को निर्दोष और भूषण रूप श्रद्धापूर्वक दान तथा धर्मस्थान में जाते आते समय याचकों को उचितदान, इस प्रकार अपनी इच्छानुकूल दान देती हुई धनश्री ने सर्वत्र लोक में प्रशंसा पायी। एक दिन मनुष्यों के मुख से ननंद की विशेष प्रशंसा सुनकर स्नेहवाली होने पर भी दोनों भौजाइयें मन में कुछ खेद पूर्वक विचारने लगी—'ननंद का इस घर के साथ ऐसा क्या सम्बन्ध है कि जो यह धन का इतना खर्च करती है ?' पीछे अपने घर के समीप रहने वाली स्त्रियों के आगे भी कुछ ईर्ष्या से ऊँच नीच तिरस्कार युक्त वचन वे बोलने लगीं।

अपनी भाभियों की परम्परा से ये बातें सुनकर वह खेद पूर्वक विचार करने लगी—'प्रायः सब जगह भाभिएं ऐसी ही होती है, उनके वचनों से दुःखी होकर मन में

अब आस्ते २ धनश्री ने शोक को छोड़ दिया और वह हमेशा यथायोग्य सब कार्यों में अपनी भाभियों को लगाने लगी। भौजाइएँ भी श्रेष्ठकुल और शीलवती होने से उसको निरन्तर अपनी माता समान मान कर उसके ऊपर अत्यन्त स्नेह भाव रखने लगीं। वे तीनों प्रतिक्रमणादि करके तत्त्व की जिज्ञासा से परस्पर हमेशा धर्मगोष्ठी करती थीं।

अब दीन दुःखीजनों को अनुकंपादान, सुपात्रों को निर्दोष और भूषण रूप श्रद्धापूर्वक दान तथा धर्मस्थान में जाते आते समय याचकों को उचितदान, इस प्रकार अपनी इच्छानुकूल दान देती हुई धनश्री ने सर्वत्र लोक में प्रशंसा पायी। एक दिन मनुष्यों के मुख से ननंद की विशेष प्रशंसा सुनकर स्नेहवाली होने पर भी दोनों भौजाइयें मन में कुछ खेद पूर्वक विचारने लगीं—'ननंद का इस घर के साथ ऐसा क्या सम्बन्ध है कि जो यह धन का इतना खर्च करती है?' पीछे अपने घर के समीप रहने वाली स्त्रियों के आगे भी कुछ ईर्ष्या से ऊँच नीच तिरस्कार युक्त वचन वे बोलने लगीं।

अपनी भाभियों की परम्परा से ये बातें सुनकर वह खेद पूर्वक विचार करने लगी—'प्रायः सब जगह भाभिएं ऐसी ही होती हैं, उनके वचनों से दुःखी होकर मन में

प्रकार कहने लगा—'हे महापापिनी ! बाहर निकल, मेरा स्पर्श मत कर ।' ऐसे क्रोध युक्त वचनों से तिरस्कार पाकर वह वियोगिनी अबला रुदन करती हुई 'मैंने क्या पाप किया कि जिससे पति नाराज़ हुए' ऐसा विचारने लगी। याद करने पर अपना कोई भी अपराध याद न आने से रात्रि में फक्त पृथ्वी पर ही लोटती हुई वह अत्यन्त दुःख अनुभव करने लगी। जिसको अत्यन्त अधैर्य उत्पन्न हुआ है ऐसी वह थोड़े पानी की मछली की तरह रात्रि के तीन प्रहर को सौ प्रहर से भी अधिक मानने लगी। प्रभात के समय उसका निस्तेज़ मुख देखकर धनश्री ने उसको पूछा—'हे सुभ्रु ! आज तू उदास क्यों मालूम होती है?' सरल ऐसी पद्मश्री ने रात का यथार्थ वृत्तान्त उसको कहा। पहले के संकेत के अनुसार मन मे हंसती हुई धनश्री उस को आश्वासन देती हुई कहने लगी—'हे मुग्धे ! तू खेद नहीं कर, तेरे पर तेरा पति क्रोधित हुआ है, तो भी मैं उसको ऐसी युक्ति से समझाऊंगी कि वह तेरे पर फिर पूर्व की तरह स्नेह करेगा।

अब अपने घर के वृत्तान्त से जिसके मन में अत्यन्त अधैर्य उत्पन्न हो गया है, ऐसे भाई को योग्य अवसर मे कोमल वचनों से धनश्री ने पूछा—'हे भ्रात! आज तुम्हारे मुख पर किस कारण से श्यामता छा रही है?' विद्वान्

बहिन के वचनों पर विश्वास लाकर और शंका का त्याग कर अच्छे विकल्पों से पहले की तरह पद्मश्री पर अधिक प्रीति करने लगा।

एक दिन उसी प्रकार धनावह जब कोई कार्य प्रसंग से नजदीक में था, उस समय धनश्री ने धर्म विचार करते २ उसकी पत्नी कमलश्री को कहा—"हे शुभे! जनरंजन करने के लिये बहुत वचन प्रपंचों से क्या? 'अपना हाथ पवित्र रखना' यही स्त्रियों का धर्म है।" ऐसा वचन सुन कर धनावह मन में खेद लाकर विचारने लगा—"अहा! निश्चय! मेरी पत्नी कुलवती होने पर भी उस को चोरी करने का स्वभाव मालूम होता है, ऐसा न हो तो यह बहिन उसको इस प्रकार की शिक्षा किस लिये दे? कारण कि कोई भी स्खलना बिना घोड़ा चाबुक का पात्र नहीं बनता।" इस प्रकार विचार करके पहले के जैसे दोष की शंका करके मन में दुःखी होकर उसने भी निवास स्थान में आई हुई अपनी प्रिया का तिरस्कार किया। जिससे अत्यन्त दुःखी होकर उसने भी उसी प्रकार रात्रि व्यतीत की। सुबह जब धनश्री ने पूछा तब उसने बीती हुई बात कही। यह सुन कर मृदु और शीतल वचनों से भाभी को आश्वासन दिया। 'मानो कुछ जानती न हो' ऐसे दंभ से एकान्त में वह धनावह को कहने लगी—"हे वीर!

आज अकस्मात् कमलश्री पर क्यों कोपायमान हु
वह कहने लगा—'मेरे आगे उस तस्करी (चो
वाली) का नाम भी मत ले।' धनश्री कहने ल
भाई! जिसने एक कण २ करके आपके घर
किया है, उसमें यह असंभाव्य की संभावना
हैं? चन्द्रमा में उष्णता, सूर्य में अंधकार और
अग्नि की संभावना की जैसे इसमें लेशमात्र भ
करने का दोष हो ऐसा मै नहीं मान सकती।'
इस प्रकार कहने लगा—'जो इसमें चोरी का
होता तो 'हाथ पवित्र रखना' ऐसा उपदेश उस
कारण से दिया?' धनश्री कुछ हँस कर बोली—
अपने काम काज में व्यग्र हुआ पुरुष तो घर
समय ही आता जाता है, परन्तु घर की रक्षा में
स्त्री तो सारे दिन घर में ही रहती है, कभी उसक
नहीं है, वह भी जब घर को लूटेगी तो पीछे व
रक्षा करने वाला कौन रहेगा? जब कुत्ते का
करेगा तो छींका कहाँ बँधेगा? हे भ्रात! पुरुषों
चोरी करना निषेध है और स्त्रियों को तो विशे
से निषेध है। इस प्रकार सामान्य बात करते
दिन मैंने ऐसा कहा था, दूसरा कोई कारण न

धनावह प्रथम के जैसे मधुर आलाप से पत्नी को प्रसन्न करने लगा।

अब धनश्री ने निर्णय किया—'मेरा किया हुआ शुभ या अशुभ स्नेह के वश से मेरे दोनों भाई सब शुभ ही मान लेते है।' ऐसा विचार करके धनश्री भौजाइयों के ऊँच नीच वचनों का अनादर करके पहले के जैसे दानादि पुण्यकर्म करने लगी। परन्तु दूसरे को दुःख के हेतु भूत उस मायागर्भित उपदेश से धनश्री ने दुःख से भोगने लायक, दृढ़ और उत्कृष्ट कर्म बाँध लिया। अन्त में धनपति आदि पांचों ही मनुष्य संविग्न मन वाले होकर और निष्पाप (शुद्ध) दीक्षा अंगीकार करके स्वर्ग में गये। वहाँ भी पूर्वभव के संस्कार से परस्पर स्नेहार्द्र मन वाले होकर बहुत काल तक उन्होंने दिव्य कामभोग भोगें।

यहाँ भरतक्षेत्र में अलकापुरी के साथ स्पर्द्धा करने वाला और वैभव ऋद्धि से प्रतिदिन वृद्धि पाता हुआ ऐसा साकेतपुर नाम का नगर था। वहाँ बड़ी कीर्त्ति वाला और लक्ष्मी का स्थान अशोक नाम का सेठ रहता था। उसके प्रीति वाली और सती श्रीमती नाम की पत्नी थी। अब देव के भव में भोगते हुए बाकी रहे हुए सत्कर्म के प्रभाव से वहाँ से च्यव कर, दोनों भाइयों के जीव क्रम से उस सेठ के घर पुत्रपन से उत्पन्न हुए। उनमें प्रथम सागरदत्त

धनावह प्रथम के जैसे मधुर आलाप से पत्नी को प्रसन्न करने लगा ।

अब धनश्री ने निर्णय किया—'मेरा किया हुआ शुभ या अशुभ स्नेह के वश से मेरे दोनों भाई सब शुभ ही मान लेते हैं ।' ऐसा विचार करके धनश्री भौजाइयों के ऊँच नीच वचनों का अनादर करके पहले के जैसे दानादि पुण्यकर्म करने लगी । परन्तु दूसरे को दुःख के हेतु भूत उस मायागर्भित उपदेश से धनश्री ने दुःख से भोगने लायक, दृढ़ और उत्कृष्ट कर्म बाँध लिया । अन्त में धनपति आदि पांचों ही मनुष्य संविग्न मन वाले होकर और निष्पाप (शुद्ध) दीक्षा अंगीकार करके स्वर्ग में गये । वहाँ भी पूर्वभव के संस्कार से परस्पर स्नेहार्द्र मन वाले होकर बहुत काल तक उन्होंने दिव्य कामभोग भोगें ।

यहाँ भरतक्षेत्र में अलकापुरी के साथ स्पर्द्धा करने वाला और वैभव ऋद्धि से प्रतिदिन वृद्धि पाता हुआ ऐसा साकेतपुर नाम का नगर था। वहाँ बड़ी कीर्त्ति वाला और लक्ष्मी का स्थान अशोक नाम का सेठ रहता था। उसके प्रीति वाली और सती श्रीमती नाम की पत्नी थी। अब देव के भव में भोगते हुए बाकी रहे हुए सत्कर्म के प्रभाव से वहाँ से च्यव कर, दोनों भाइयों के जीव क्रम से उस सेठ के घर पुत्रपन से उत्पन्न हुए। उनमें प्रथम सागरदत्त

उसकी प्रीतिमती नाम की स्त्री की कुक्षी से लावण्ययुक्त शोभा वाली श्रीमती और कान्तिमती के नाम से पुत्री रूप में जन्मी। कामदेव के क्रीडा के वन समान और युवकों के मन को मुग्ध करने वाला, यौवनावस्था आने पर उनके शरीर का सौंदर्य कोई अजब ही प्रकार का हुआ। परस्पर गाढ़ स्नेह से एक दूसरे के वियोग को सहन करने में असमर्थ होने से, उनका पिता उन दोनों को एक गृहस्थ के घर ही देना चाहता था किन्तु सपत्नी (शोक्य) पन में स्नेह होने पर दुर्निवार वैर का संभव है, इसलिये वह श्रीमन्त ऐसा एक पति को देना नहीं चाहता था। अपनी पुत्री के गुण और शील आदि से उनके योग्य ऐसे दो भाई रूप वर की सर्वत्र शोध करता २ वह साकेतपुर आया। वहाँ अशोक सेठ के दोनों पुत्रों को देख कर और उनकी योग्यता का मन में विचार करके हर्षित होकर उसने सागरदत्त और समुद्रदत्त को अपनी दोनों पुत्रियां दीं। उनमें सागरदत्त शुभलग्न में श्रीमती को परणा और पुण्यात्मा समुद्रदत्त कान्तिमती को परणा। शील सौभाग्य से सुशोभित ऐसी अपनी २ पूर्वजन्म की पत्नियों को पाकर वे दोनों भाई गाढ़ प्रीति वाले हो कर बहुत सुखी हुए।

यहां सागरदत्त के जाने बाद आवास भुवन में आते

इस प्रकार दुःख से उत्पन्न हुए ज्ञानगर्भित वैराग्य के रंग से जिसकी विषय वासना नाश होगई है ऐसी वह सती पिता को कहने लगी—'हे तात ! मेरे दुःख से दुःखित होकर आप लेशमात्र भी सन्ताप न करें कि यह बेचारी मूल से ही पति के संग से मुक्त हुई है। कारण कि मैं यथार्थ परब्रह्म के अनन्त सुख में स्पृहा वाली हूँ, एवं एकान्त दुःख का स्थान रूप ऐसा इस संसार को त्याग करने की मेरी पहले से ही इच्छा थी, परन्तु उसमें पति की आज्ञा की आवश्यकता थी, वह नृत्य करने वाले को तबलों की आवाज़ की जैसे मुझे इतने में ही मिल गई। इसलिये हे तात ! मुझे आज्ञा दो और आज तक किये हुए अपराधों की क्षमा करो। अब सबसे विरक्त होकर मै दीक्षा स्वीकार करूँगी।' प्रसंग को जानने वाले सेठ ने भी सब स्वजनों की समक्ष हर्षित होकर आज्ञा दे दी। जिससे पवित्र होकर उसने सात क्षेत्रों में अपना धन खर्च करके सुव्रता नाम की आर्या के पास बड़े महोत्सव पूर्वक दीक्षा अंगीकार की। शुद्ध आचार में प्रवर्तनी हुई, पाप कर्मों से रहित स्वाध्याय ध्यान में तत्पर, मुक्ता समान निर्मल गुणों से युक्त, अभिमान रहित, क्रोध रहित अधिक तप करती हुई और प्रमाद रहित ऐसी वह निरन्तर अच्छी तरह संयम का आराधन करने लगी।

इस प्रकार दुःख से उत्पन्न हुए ज्ञानगर्भित वैराग्य के रंग से जिसकी विषय वासना नाश होगई है ऐसी वह सती पिता को कहने लगी—'हे तात ! मेरे दुःख से दुःखित होकर आप लेशमात्र भी सन्ताप न करें कि यह बेचारी मूल से ही पति के संग से मुक्त हुई है। कारण कि मैं यथार्थ परब्रह्म के अनन्त सुख में स्पृहा वाली हूँ, एवं एकान्त दुःख का स्थान रूप ऐसा इस संसार को त्याग करने की मेरी पहले से ही इच्छा थी, परन्तु उसमें पति की आज्ञा की आवश्यकता थी, वह नृत्य करने वाले को तबलों की आवाज़ की जैसे मुझे इतने में ही मिल गई। इसलिये हे तात ! मुझे आज्ञा दो और आज तक किये हुए अपराधों की क्षमा करो। अब सबसे विरक्त होकर मै दीक्षा स्वीकार करूँगी।' प्रसंग को जानने वाले सेठ ने भी सब स्वजनों की समक्ष हर्षित होकर आज्ञा दे दी। जिससे पवित्र होकर उसने सात क्षेत्रों मे अपना धन खर्च करके सुव्रता नाम की आर्या के पास बड़े महोत्सव पूर्वक दीक्षा अंगीकार की। शुद्ध आचार में प्रवर्तती हुई, पाप कर्मों से रहित स्वाध्याय ध्यान में तत्पर, मुक्ता समान निर्मल गुणों से युक्त, अभिमान रहित, क्रोध रहित अधिक तप करती हुई और प्रमाद रहित ऐसी वह निरन्तर अच्छी तरह संयम का आराधन करने लगी।

वे प्रवर्त्तिनी को कहने लगीं—'हे भगवति ! निरन्तर घर को शून्य रखकर यहाँ आने से हमारे पति खेद पाते हैं और वे मिथ्या-दृष्टि होने से हमारे पर द्वेष करते हैं। इस-लिये सर्वाङ्गसुन्दरी को हमारे घर पढ़ाने के लिये भेजो कि जिससे श्रावक की सब क्रिया हमको यथार्थ आ जाय।' उनके इस प्रकार के कथन से उनको पढ़ाने के लिये प्रवर्त्तिनी की आज्ञा से सर्वाङ्गसुन्दरी प्रतिदिन उनके घर जाने लगी। जिससे उनके पति ने उसको देखकर के अपनी प्रियाओं से कहने लगे—'हे मुग्धाओ ! सामान्य प्रकृति वाली इस सर्वाङ्गसुन्दरी का अति परिचय करना तुमको परिणाम में लाभदायक न होगा।' इस प्रकार उनके पति ने निषेध किया तो भी धर्म की आस्तिकता से तथा पूर्व जन्म के स्नेह से वे दोनों उस साध्वी के नित्य परिचय से लेशमात्र भी विराम न पाईं।

एक दिन ग्रीष्मऋतु में श्रीमती ने अपने रहने के मध्य घर में मोती का हार कंठ से उतार कर और अपने समीप रखकर सर्वाङ्गसुन्दरी के साथ धर्मगोष्ठी करने लगी, इतने में किसी अकस्मात् कार्य की शीघ्रता से हार को वहीं रख कर तुरन्त कहीं चली गई। चोरपन को सूचित करने वाला कपट वचन से सर्वाङ्गसुन्दरी ने पूर्व जन्म में जो कर्म बाँधा था, वह दुष्कर्म इस समय उदय आया। इसके उदय से

सर्वाङ्गसुन्दरी विचारने लगी—'अहो ! ऐसा कौनसा कर्म मैंने पहले किया था कि जिसका ऐसा दुःसह फल मुझे प्राप्त हुआ । अहा ! बहुत खेद की बात है कि प्राणी ऐसे पाप एक लीलामात्र में करते हैं कि जिनका विपाक असंख्य जन्मों में दुःखी होकर वे भोगते हैं । प्राणी जहाँ तक सद् ध्यान और सद्अनुष्ठानरूप जल से अपने पापों को धोकर के स्वयं आत्मा के सत्यस्वरुप को देखे नहीं, वहाँ तक ही इस संसार में दुष्कर्म से मलिन होकर विविध योनियों में अनेक प्रकार के रूप धारण करके दुःख पाते है । यदि मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ्य भाव में चित्त स्थिर रहे तो प्राणियों को परमब्रह्म (मोक्ष) पद बहुत दूर नहीं है ।' इस प्रकार यथार्थ संवेग के रंग से रंगाती हुई सर्वाङ्ग-सुन्दरी ने घातिया कर्मों के क्षय होते ही, तुरन्त केवलज्ञान प्राप्त किया । इतने में समीप आये हुए देव जय २ शब्द करने लगे और आकाश में उसी समय मधुर स्वर से देव दुन्दुभि का नाद होने लगा। उस समय राजा प्रधान और और श्रेष्ठीवर्ग आदि श्रद्धालु मन वाले नगरवासी जन वहाँ उन को वन्दन करने के लिये और सद्धर्म सुनने के लिये आये ।

यहाँ श्रीमती को हार नहीं मिलने से अपने परिजन वर्ग को पूछने लगी—'यहां से हार कहाँ गया ?' परिजनों

को जान लिया है, ऐसी वह सती सन्मुख बैठे हुए उन सब को धर्मोपदेश देने लगी।

'अहो! भव्यजीवो! जो देखने में नहीं आता, जो सुनने में भी नहीं आता और जिसकी मन में कल्पना भी नहीं हो सकती। ऐसे आश्चर्यभूत वृत्तान्त को दैव (कर्म) एक क्षणवार में कर सकता है। प्रवल उच्छृङ्खल ऐसा यह कर्म संसार में प्राणियों को निरन्तर अनेक प्रकार से दुःखी करता है। विधि, विधाता, नियति, काल, प्रकृति, ईश्वर और दैव इत्यादि भिन्न २ नाम से अनेक दार्शनिक लोग उसको बोलते हैं। समस्त प्राणियों को हो गये, हो रहे और होने वाले दुःख के समूह का निदान रूप ऐसा दैव को ही वैज्ञानिक लोग वारंवार वखानते हैं। मोक्षमार्ग की अर्गला (आगल) समान उस कर्म का नाश करने के लिये तत्पर हुए मनुष्यों को ज्ञान दर्शन और चारित्र रूप धर्म ही निरन्तर आराधने योग्य है।' इस प्रकार देशना समाप्त होने वाद सागरदत्त सभा समक्ष पूछने लगा—'हे भगवति! चित्रमयूर मुक्ताहार को कैसे निगल गया?' केवली कहने लगे—'पूर्वकृत कर्मों से प्रेरित हुए देव के आश्रय से, जैसे गवाक्ष में रह कर कोई पुरुष तुम्हारे समक्ष वोला था. वैसे चित्रमयूर भी हार निगलता है।' पूर्व संकेत के कथन से सागरदत्त अचम्भित होकर फिर

तक साधु धर्म का अच्छी तरह पालन किया। क्रमशः तप ध्यान और क्रिया के उद्योग से उन्होंने समग्र पाप धो डाला और योग्य समय में उज्वल केवल ज्ञान प्राप्त करके तथा आयुष्य क्षय होते ही सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करके क्रमशः सर्व अर्थों की सिद्धि रूप ऐसे सिद्धपद को प्राप्त किया।

भौजाई की पीड़ा के कारण से कपट युक्त बोले हुए लेशमात्र वाक्य भी धनश्री को ऐसे कटुक फल को देने वाले हुए. इसलिये सज्जनों ने मन वचन और काया से दूसरे को पीड़ा करनी नहीं. करानी नहीं और करने वाले को अनुमति भी देना नहीं।"

इस प्रकार कान से सुधारस समान आचार्य महाराज की वानी सुन कर पाप कर्म के विपाक से हृदय में अत्यंत भय पा करके. देवदिन्न तुरंत ऐसे संसार रूप कारागार (जेल) की राग बुद्धि को छोड़ करके. अपनी प्रिया सहित अभंग वैराग्य वाला हुआ। पीछे अपने बड़े पुत्र पर कुटुम्ब का सब भार आरोपन करके तथा जिन चैत्यालयों में अष्टाह्निका महोत्सव करके दोनों ने दीक्षा लिया। वहाँ दूसरे बहुत भव्य जीवों ने भी दुःख और दुर्गति से भय पाकरके यथानुकूल सम्यक् प्रकार के साधु धर्म और श्रावक धर्म का आराधन किया। सम्यक् प्रकार से चारित्र

❀ तीसरा उल्लास ❀

जा अपने उज्ज्वल आशय में नरकादि दुर्गति का उच्छेदन करने वाले प्रकाशमान, अलौकिक, तेजरूप सुदर्शन (क्षायिक भाव) को धारण करते हैं, ऐसे मोक्ष-लक्ष्मी के स्वामी श्री युगादिजिन हमको लक्ष्मी की प्राप्ति के निमित्त हो।

अब केवल नाम के कुमार ने तीन जगत् के नाथ को प्रणाम करके कहा—हे 'स्वामिन्! मोह का त्याग करने से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है, ऐसा आपने उपदेश किया और उस मोह का त्याग तो मोह के अंग का त्याग करने से ही हो सकता है। इस संसार में विद्वानों ने मोह का प्रथम अंग लक्ष्मी को ही माना है; जो मोहनलता की तरह प्राणियों को मोहित करती है।' भगवान् इस प्रकार के उनके वचनों को सुनकर पुत्र के हित के लिये आदर पूर्वक कहने लगे—'इस लोक और परलोक सम्बन्धी अनर्थ का कारण यह लक्ष्मी ही है। यह चतुरंगिणी सेनारूप, रमणीय, इन्द्रिय सम्बन्धी सब सुखों को देने वाली और त्रिवर्ग का साधन रूप है, इसलिये इसका त्याग करना तो असम्भव है, प्रथम

का पालन करके देवदिन्न और सरस्वती स्वर्ग में गये। वहाँ से अनुक्रम मोक्ष सुख को प्राप्त करेंगे।

हे वत्सो ! इस प्रकार तीव्र मोह के उदय से प्रियंगु सेठ संसार में भ्रमा और मोह का त्याग करने से प्रिया सहित उसके पुत्र देवदिन्न ने संसार का पार पाया। इसलिये हे पुत्रो ! ऐश्वर्य, प्रिया, अपत्य और पंचेन्द्रियों का सुख इन का मोह छोड़ कर के मन को धर्म में लगा दो।"

※ इति दूसरा उल्लास ※

❀ तीसरा उल्लास ❀

जा अपने उज्ज्वल आशय में नरकादि दुर्गति का उच्छेदन करने वाले प्रकाशमान, अलौकिक, तेजरूप सुदर्शन (क्षायिक भाव) को धारण करते हैं, ऐसे मोक्ष-लक्ष्मी के स्वामी श्री युगादिजिन हमको लक्ष्मी की प्राप्ति के निमित्त हो।

अब केवल नाम के कुमार ने तीन जगत् के नाथ को प्रणाम करके कहा—हे 'स्वामिन्! मोह का त्याग करने से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है, ऐसा आपने उपदेश किया और उस मोह का त्याग तो मोह के अंग का त्याग करने से ही हो सकता है। इस संसार में विद्वानों ने मोह का प्रथम अंग लक्ष्मी को ही माना है; जो मोहनलता की तरह प्राणियों को मोहित करती है।' भगवान् इस प्रकार के उनके वचनों को सुनकर पुत्र के हित के लिये आदर पूर्वक कहने लगे— 'इस लोक और परलोक सम्बन्धी अनर्थ का कारण यह लक्ष्मी ही है। यह चतुरंगिणी सेनारूप, रमणीय, इन्द्रिय सम्बन्धी सब सुखों को देने वाली और त्रिवर्ग का साधन रूप है, इसलिये इसका त्याग करना तो अशक्य है, प्रथम

तो यह विना क्लेश के प्राप्त नहीं होती है, और यदि प्राप्त भी हो जाय तो उसकी रक्षा करने में अनेक प्रकार के विघ्न आते हैं, जिससे उसका बड़ी मुश्किल से लोग रक्षण कर सकते हैं। कहा है कि—

'अर्थानामर्जने दुःख-मर्जितानां च रक्षणे।
आये दुःखं व्यये दुःखं धिगर्थं दुःखभाजनम्॥'

धन प्राप्त करने में और प्राप्त किये हुए धन की रक्षा करने में कष्ट उठाना पड़ता है। लक्ष्मी की आय (आने में) में भी दुःख और व्यय में (जाने में) भी दुःख है। अहो! लक्ष्मी एकान्त दुःख का पात्र है इसलिये उसको धिक्कार हो।' हे भद्रो! धन को प्राप्त करने में और उसके व्यय (खर्च) में जिसने प्रत्यक्ष कष्ट देखा है, ऐसे प्रसिद्ध रत्नाकर नाम के धनिक का यहाँ दृष्टान्त है उसको सुनो—

सूर्यपुर नाम के नगर में रत्नाकर नाम का एक प्रसिद्ध सेठ रहता था। उसके श्रीमती नाम की स्त्री और सूर्यमल्ल नाम का पुत्र था। तृष्णायुक्त हृदय से जल स्थल मार्ग की अनेक प्रकार की यात्रा करके, शीत, क्षुधा, तृषा, आतप आदि के कष्टों को अनेक वार सहन करके, जिनके स्वच्छन्दी मन के अनुकूल चलने से ही साध्य हो सके ऐसे राजाओं की सेवा करके, कपट पूर्वक अनेक प्रकार के

आरम्भ समारम्भ वाले व्यापार करके, चिरकाल बेईमानी से क्रय-विक्रय करके और अपने घर के खर्च में भी बहुत कुछ कसर करके उस कुबुद्धि सेठ ने बहुत धन प्राप्त किया था।

एक दिन प्राप्त किये हुए धन की रक्षा करने का उपाय विचार कर अपने पुत्र से एकान्त में उसने कहा—'हे वत्स! यदि धन प्रत्यक्ष हो तो राजा, चोर, भागीदार और धूर्त्त लोग लोभ से उसको लेने की इच्छा करते हैं। इसलिये उसको पृथ्वी में गाड़ दिया जाय तो अच्छा।' ऐसी सलाह करके, पुत्र के साथ, मध्यरात्रि के समय सोना मुहरों से भरे हुए कलश को लेकर वह श्मशान में गया। वहाँ बहुत धन हार जाने से देने में असमर्थ होने के कारण कोई जुआरी दूसरे जुआरियों से भाग करके प्रथम से ही वहाँ छुपकर बैठा हुआ था। 'ये पिता और पुत्र जितना धन पृथ्वी में गाड़ करके जायँगे वह सब धन मेरे आधीन करके मैं अवश्य ले जाऊँगा।' इस विचार से खुश होकर वह गुप्त रीति से उस स्थान को देखने लगा और लोभ के वश होकर वहाँ पड़े हुए अनाथ मुर्दों के साथ अचेतनसा होकर पड़ा रहा। किन्तु तीक्ष्ण बुद्धि वाला सेठ धन गाड़ते समय पुत्र से कहने लगा—'कोई इस स्थान को देख न ले इसलिये तू चारों तरफ तलाश कर।' ऐसा सुनकर वह

चलायमान नहीं हुआ। रत्नाकर सेठ उन कानों को लोहू वाले देखकर हृदय में चकित हुआ और पुत्र को कहने लगा—'हे वत्स! मुर्दे में कभी लोहू नहीं होता, इसलिये इसमें कुछ भेद है, जिससे उसकी नासिका छेदे विना 'यह धूर्त्त है या शव है?' ऐसी शंका मेरे हृदय में से हट नहीं सकती। पुत्र सरल हृदय से कहने लगा—'हे तात! आपके आग्रह से कुल के अनुचित ऐसा पाप कर्म प्रथम तो मैंने किया, तो भी 'यह मृतक है या जीवित है?' ऐसा विश्वास आपको नहीं हुआ, इतना भी आप नहीं समझते कि वह जीवित होता तो इतना कष्ट कैसे सहन कर सकता? आप वृद्ध होने पर भी हृदय से दुर्बल है, हे तात! इसी प्रकार जहाँ तहाँ पैर २ में भय की शंका करने से आपको शरम नहीं आती?' सेठ कहने लगा—'हे वत्स! दूसरे का द्रोह करने में एक मन वाले मनुष्यों को जगत् में कुछ भी दुस्सह या दुष्कर नहीं है। यह कान छेदने का कष्ट तो दूर रहा परन्तु कितने ही नराधम मनुष्य अपने शिर को जोखम में डाल करके भी परस्त्री और परलक्ष्मी की चाहना करते है। जिनसे दिव्य शक्ति वाले देव भी त्रास पाते हैं ऐसे धूर्तों से भय पाने में मेरे जैसे को लज्जा क्यों आवे। कहा है कि—

'उत्सङ्गे सिन्धुभर्त्तुर्भवति मधुरिपु
गाढमाश्लिष्य लक्ष्मी-

में कुछ मत्सर (ईर्ष्या) ला कर के उसकी नासिका भी छेद लाया। पीछे सेठ शंका रहित होकर अपना धन भूमि मे गाड़ करके पुत्र के साथ घर आया। उनके जाने बाद नाक और कान रहित होने पर भी प्रबल हृदय वाला, जबरदस्त उद्यम करने वाला और जिसने उस धन से अपनी दरिद्रता को दूर करने का विचार कर लिया है ऐसे उस धूर्त्त ने तुरन्त ही सब धन निकाल लिया और द्यूत (जूआ) के व्यसन वाला ऐसा वह निःशंक होकर के अलौकिक दान और भोगों से सेठ की लक्ष्मी का इच्छा पूर्वक भोग करने लगा। कहा है कि—'अपने आधीन की हुई परस्त्री और परलक्ष्मी का विलास करने में ऐसे अधम पुरुष जन्म से ही बहुत कुशल होते है।'

एक दिन नाक और कान से रहित, याचकों को इच्छित दान देने वाले और लीला पूर्वक चलने वाले उस धूर्त्त को सेठ ने देखा। उसको देख कर आश्चर्य से विकसित मन वाले सेठ ने विचार किया कि—'ऐसे विकृत मुख वाले के पास इतनी समृद्धि कहाँ से ? इस धूर्त्त ने मेरा गाड़ा हुआ धन तो नहीं हरण किया है ?' इस प्रकार शंकाकुल होकर वह तुरन्त ही वहां देखने के लिये गया। वहां अपने धन को न देख कर मानो वज्र से आघात हुआ हो ऐसे दुःखी होकर भूमि पर गिर पड़ा और नष्ट

में कुछ मत्सर (ईर्ष्या) ला कर के उसकी नासिका भी छेद लाया। पीछे सेठ शंका रहित होकर अपना धन भूमि मे गाड़ करके पुत्र के साथ घर आया। उनके जाने बाद नाक और कान रहित होने पर भी प्रबल हृदय वाला, जबरदस्त उद्यम करने वाला और जिसने उस धन से अपनी दरिद्रता को दूर करने का विचार कर लिया है ऐसे उस धूर्त्त ने तुरन्त ही सब धन निकाल लिया और द्यूत (जूआ) के व्यसन वाला ऐसा वह निःशंक होकर के अलौकिक दान और भोगों से सेठ की लक्ष्मी का इच्छा पूर्वक भोग करने लगा। कहा है कि—'अपने आधीन की हुई परस्त्री और परलक्ष्मी का विलास करने में ऐसे अधम पुरुष जन्म से ही बहुत कुशल होते हैं।'

एक दिन नाक और कान से रहित, याचकों को इच्छित दान देने वाले और लीला पूर्वक चलने वाले उस धूर्त्त को सेठ ने देखा। उसको देख कर आश्चर्य से विकसित मन वाले सेठ ने विचार किया कि—'ऐसे विकृत मुख वाले के पास इतनी समृद्धि कहाँ से ? इस धूर्त्त ने मेरा गाड़ा हुआ धन तो नहीं हरण किया है ?' इस प्रकार शंकाकुल होकर वह तुरन्त ही वहाँ देखने के लिये गया। वहाँ अपने धन को न देख कर मानो वज्र से आघात हुआ हो ऐसे दुःखी होकर भूमि पर गिर पड़ा और जरा

सेठ क्या कहता है ?' धूर्त्त ने कहा—'ये सब सत्य है, परन्तु इसमें कुछ कहना है। परस्पर चित्त की अनुकूलता से व्यौपारी लोग व्यवहार से प्रतिदिन करोड़ों रुपयों का व्यापार करते हैं। चित्त की अनुकूलता से परस्पर अच्छा व्यवहार होने पर कालान्तर में यदि लेने वाला नामंजूर हो जाय तो महाजन उसका निषेध करते हैं अर्थात् उस को ऐसा नहीं करने देते। हे विभो! इस प्रकार के व्यवहार से मैंने भी उसका धन लिया है। तो लोभ के वश होकर यह सेठ अभी किस लिये कलह करता है ? उस समय रोष से शुष्क मुख करके सेठ ने चोर को कहा कि—'हे मूढ़! चोरी से मेरा धन लेकर झूठ क्यों बोलता है ?' धूर्त्त बोला—'हे सेठ! मेरी वस्तु को तुम कैसे भूल जाते है ? मैंने विनिमय (अदल बदल) से तुम्हारा धन लिया है, मुफ्त नहीं लिया है।' उस समय बिच्छू से काटे हुए बन्दर की तरह अतिशय कूदता हुआ और कोप से शरीर को कँपाता हुआ सेठ आक्षेप पूर्वक उसको कहने लगा—'अरे निर्लज्ज! बदले में तूने मुझको क्या क्या दिया है ? वह स्पष्ट कह दे कि जिससे दूध और पानी की भिन्नता अभी राजसभा में प्रकट हो।' धूर्त्त कहने लगा—'अरे सेठ! उस समय बदले में मेरा कान और नाक तुमने लिया था वह क्या इस समय भूल गये ? हे सेठ! यह अदल बदल

लक्ष्मी ये जाते समय और आते-समय मनुष्यों को देखने में नहीं आते। संध्या समय के बादल के रंग जैसी या दुष्ट जन की प्रीति जैसी लक्ष्मी तो देखते २ ही अकस्मात् चली जाती है। जीवहिंसा, मृषावाद आदि महापापों को करने वाले और मद्य मांस आदि को सेवन करने वाले ऐसे म्लेच्छों का भी वह आदर करती है। और छः प्रकार की आवश्यक क्रिया में तत्पर, शुद्ध न्यायमार्ग में चलने वाले और सद्गुणों से उत्कृष्ट ऐसे कुलीन मनुष्य हों उनको वह दूर से छोड़ देती है। ऐसी लक्ष्मी को प्राप्त करके कितने ही मद्य पीने वाले की तरह सरल रीति से चल नहीं सकते, सरल मार्ग में भी वे स्खलना पाते हैं। ज्वर से आकुल मनुष्य की जैसे लक्ष्मी का संग करने वाले मनुष्यों को भोजन पर द्वेष, जड़ (जल) में प्रीति, तृष्णा (तृषा) और मुख में कटुकता उत्पन्न होती है। जैसे धुआँ की घटा उज्वल मकान को भी मलिन कर देती है, वैसे लक्ष्मी मनुष्य के निर्मल मन को मलिन करती है। ऐसी बृहत् लक्ष्मी राज्य के निबन्धरूप है और हे वत्सो! राज्य लाभ पाताल रंध्र की तरह दुष्पूर है। वेश्या के हृदय की जैसे राज्य सर्वथा अर्थवल्लभ (धन प्रिय) होता है, दुर्जन की मित्रता की तरह अन्त में वह विरस ही होती है, सांप के करण्डिये की तरह निरन्तर वह प्रमाद रहित रक्षा करने योग्य है, एक

लक्ष्मी ये जाते समय और आते-समय मनुष्यों को देखने में नहीं आते। संध्या समय के बादल के रंग जैसी या दुष्ट जन की प्रीति जैसी लक्ष्मी तो देखते २ ही अकस्मात् चली जाती है। जीवहिंसा, मृषावाद आदि महापापों को करने वाले और मद्य मांस आदि को सेवन करने वाले ऐसे म्लेच्छों का भी वह आदर करती है। और छः प्रकार की आवश्यक क्रिया में तत्पर, शुद्ध न्यायमार्ग में चलने वाले और सद्गुणों से उत्कृष्ट ऐसे कुलीन मनुष्य हों उनको वह दूर से छोड़ देती है। ऐसी लक्ष्मी को प्राप्त करके कितने ही मद्य पीने वाले की तरह सरल रीति से चल नहीं सकते. सरल मार्ग में भी वे स्खलना पाते हैं। ज्वर से आकुल मनुष्य की जैसे लक्ष्मी का संग करने वाले मनुष्यों को भोजन पर द्वेष, जड़ (जल) मे प्रीति, तृष्णा (तृषा) और मुख मे कटुकता उत्पन्न होती हैं। जैसे धुओं की घटा उज्वल मकान को भी मलिन कर देती है, वैसे लक्ष्मी मनुष्य के निर्मल मन को मलिन करती है। ऐसी बृहत् लक्ष्मी राज्य के निबन्धरूप है और हे वत्सो ! राज्य लोभ पाताल रंध्र की तरह दुष्पूर है। वेश्या के हृदय की जैसे राज्य सर्वथा अर्थवल्लभ (धन प्रिय) होता है, दुर्जन की मित्रता की तरह अन्त में वह विरस ही होती है, सांप के करण्डिये की तरह निरन्तर वह प्रमाद रहित रक्षण करने योग्य है, एक

ठीक हो तो भी वे उनको निरर्थक समझ कर हँसी करते हैं। जो उनको प्रणाम करे, मिष्टवाक्यों से उन की स्तुति करे और उनके योग्यायोग्य वचनों को 'तथ्य' इस प्रकार बोल कर स्वीकार करे उनको ही वे बहुमान देते हैं, उनके ही वचनों को हितकारक समझते हैं. मित्रपन में या सेवकपन में उनको ही स्थापते हैं, उनकी ही प्रशंसा करते हैं, उनको ही धन देते हैं. उनके ही साथ सलाह करते हैं और उनके ही साथ गोष्ठी करते हैं। चाटुग्राह्य राजाओं की स्वतन्त्रता को जो नहीं अनुसरते वे गुणी, धीमान् या कुलीन हो तो भी कोई भी कार्य में राजा उनका आदर नहीं करते। हे वत्सो! इस प्रकार की दोषयुक्त लक्ष्मी का अज्ञजनों को ही प्रतिबन्ध होता है. सुज्ञजनों को तो प्रायः उसके संग से भी प्रतिबन्ध नहीं होता। दृष्टान्त रूप शुचिबोद्र और श्रीदेव नाम के दो वणिक्मित्रों को इस लक्ष्मी ने प्रथम मोटा बना कर पीछे उनको आक की रुई से भी हलके कर दिये थे। उनका दृष्टान्त इस प्रकार है—

भोगपुर नाम के नगर में बाप की लक्ष्मी से श्रीमन्त बने हुए श्रीदेव और शुचिबोद्र नाम के दो बनिये रहते थे। उनमें शुचिबोद्र शौचाचार में बहुत कदाग्रही था, इसलिये वह पानी से भरे हुए तांबे के लोटे को हाथ में लेकर ही सब जगह जाता था।

ठीक हो तो भी वे उनको निरर्थक समझ कर हँसी करते है। जो उनको प्रणाम करे,मिष्टवाक्यों से उन की स्तुति करे और उनके योग्यायोग्य वचनों को 'तथ्य' इस प्रकार बोल कर स्वीकार करे उनको ही वे बहुमान देते हैं, उनके ही वचनों को हितकारक समझते है, मित्रपन में या सेवकपन में उनको ही स्थापते है, उनकी ही प्रशंसा करते है, उनको ही धन देते है, उनके ही साथ सलाह करते है और उनके ही साथ गोष्ठी करते है। चाटुग्राह्य राजाओं की स्वतन्त्रता को जो नहीं अनुसरते वे गुणी, धीमान् या कुलीन हो तो भी कोई भी कार्य में राजा उनका आदर नही करते। हे वत्सो! इस प्रकार की दोषयुक्त लक्ष्मी का अज्ञजनों को ही प्रतिबन्ध होता है. सुज्ञजनों को तो प्रायः उसके संग से भी प्रतिबन्ध नहीं होता। दृष्टान्त रूप शुचिवोद्र और श्रीदेव नाम के दो वणिक्मित्रों को इस लक्ष्मी ने प्रथम मोटा बना कर पीछे उनको आक की रुई से भी हलके कर दिये थे। उनका दृष्टान्त इस प्रकार है—

भोगपुर नाम के नगर में बाप की लक्ष्मी से श्रीमन्त बने हुए श्रीदेव और शुचिवोद्र नाम के दो बनिये रहते थे। उनमे शुचिवोद्र शौचाचार में बहुत कदाग्रही था. इसलिये वह पानी से भरे हुए तांबे के लोटे को हाथ में लेकर ही सब जगह जाता था।

शाखा से दूसरी शाखा पर उछलते हुए बन्दर की तरह यह गुणों (डोरी) से आधीन करने योग्य है, फलित क्षेत्र की तरह यत्न से हमेशा रक्षण करने योग्य है और कुपथ्य भोजन की तरह परिणाम में यह भयंकर है। ऐसे ही यौवनावस्था से उन्मत्त मन वाले मनुष्यों को सब प्रकार की लक्ष्मी विकारकारिणी होती है, उनमें भी राज्यलक्ष्मी तो विशेष करके विकार करने वाली है। राजलक्ष्मी की प्राप्ति से उन्मत्त हुए राजागण अच्छे नेत्रवाले होने पर भी जन्मांध की तरह संमुख रहे हुए मनुष्यों को भी देख नहीं सकते। तथा अपने लंबे कान होने पर भी बहिरे की तरह वे समीप रहे हुए मनुष्यों के वाक्य भी नहीं सुन सकते। दुष्टजनों से पराभूत हुए पुरुषों से स्वार्थसिद्धि के लिये विनति कराते हुए ऐसे वे बोलने में समर्थ होने पर भी गूंगे की जैसे बोलते भी नहीं। वे राज्यलक्ष्मी के मद से उन्मत्त हो कर निरंकुश हाथियों की तरह संतापित प्रजा के धर्मरूप बगीचे को उखाड़ डालते हैं। धन में अन्ध सेवकों के चाटु (खुशामद) वचनों से स्तुति कराते हुए राजा अपने आप को देवों से भी अधिक मानते हैं, इसलिये ही पूजनीय देव, गुरु, स्वजन, ब्राह्मण और माता पिता को भी वे अभिमान से नहीं नमस्कार करते। अपना कहा हुआ निष्फल हो [illegible] उनको मार्ग ही बतलाते हैं, और दूसरों के कहे हुए

है, तो भी पूर्व कर्म के प्रभाव से मैं उनको मिलती हूँ या नहीं भी मिलती हूँ। ऐसा होने पर भी मेरा अतिशय परिचय से और शौचाचार के कदाग्रह से यह सेठ नष्ट हो गया है, जिससे उसने चारों वर्णों को मानने योग्य और अपने घर आती हुई मुझको अपने पैर से फेंक दी है। मेरा अतिशय परिचय से इस शुचिवोद्र की अक्ल नष्ट हो गई है, इसलिये अब उसको निर्धन करके इस प्रकार दुःखी करूँ कि जिससे यह पुनः २ मुझे प्राप्त करने के लिये समस्त शौचाचार का त्याग करके रांक हो जायँ और चाण्डाल के जूते भी बहुत बार उठावें।' इस प्रकार विचार करके लक्ष्मी ने तुरन्त ही उसका घर छोड़ दिया, जिससे इन्द्रजाल की तरह उसी समय उसका सब धन नष्ट हो गया। कहा है कि—

लक्ष्मीः शनैः शनैरेति निर्याति युगपत् पुनः।
षष्ठ्या पलैर्जलैः पूर्णा रिच्यते यद्व घटी क्षणात् ॥

'जैसे पानी में रखी हुई घड़ी साठ पलों में धीरे २ जल से भर जाती है और खाली तो एक क्षणवार में हो जाती है, वैसे लक्ष्मी भी आहिस्ते २ आती है और जाती है तब एक साथ चली जाती है।'

एक दिन चाण्डालों ने उसके द्वार के आगे आकर के उसकी स्त्री को इस प्रकार पूछा—'तुम्हारा पति कहाँ है?' उसने उत्तर दिया कि 'भीतर है'। तब वे चण्डाल बोले— 'शुचिवोद्र के पिता की हमारे पास जो लेनी थीं उन सोना मोहरों को हम लाये हैं, ये उसको भीतर जाकर के दे दो।' शुचिवोद्र की स्त्री ने उन्हें ले लीं और घर में जाकर शुचिवोद्र को दे दीं। उस समय 'इन सोना मोहरों के पानी की छींट दी हैं या नहीं?' इस प्रकार सेठ ने पूछा तब उसने कहा—'नहीं दीं।' यह सुनकर सब जगह अशुचि हो जाने से उस समय वह अत्यन्त खेद करने लगा— 'अरे! इन सोना मोहरों ने मेरा सारा घर अपवित्र कर डाला, इसलिये इनका स्पर्श करने से भी भ्रष्टता होती है।' इस प्रकार बकते हुए उसने रोष से लाल गरम होकर उन सोना मोहरों को अपने बांये पैर से ठोकर मार कर दूर फेंक दीं। इस प्रकार शुचिवोद्र ने अपनी लक्ष्मी की अवज्ञा की, जिससे अत्यन्त मत्सर लाकर उसके घर का त्याग करने की इच्छा वाली लक्ष्मी विचार करने लगी— 'मुझे प्राप्त करने की इच्छा से लोग अटवी का भी उल्लंघन करते हैं, बड़े २ समुद्र को भी तैरते हैं, पर्वत के शिखर पर चढ़ते हैं, गुफाओं में प्रवेश करते हैं और क्षुधा, तृषा, आतप आदि महान् कष्टों को भी बहुत बार सहन करते

है, तो भी पूर्व कर्म के प्रभाव से मै उनको मिलती हूँ या नहीं भी मिलती हूँ। ऐसा होने पर भी मेरा अतिशय परिचय से और शौचाचार के कदाग्रह से यह सेठ नष्ट हो गया है, जिससे उसने चारों वर्णों को मानने योग्य और अपने घर आती हुई मुझको अपने पैर से फेंक दी है। मेरा अतिशय परिचय से इस शुचिवोद्र की अक्ल नष्ट हो गई है, इसलिये अब उसको निर्धन करके इस प्रकार दुःखी करूँ कि जिससे यह पुनः २ मुझे प्राप्त करने के लिये समस्त शौचाचार का त्याग करके रांक हो जायँ और चाण्डाल के जूते भी वहुत वार उठावें।' इस प्रकार विचार करके लक्ष्मी ने तुरन्त ही उसका घर छोड़ दिया, जिससे इन्द्रजाल की तरह उसी समय उसका सब धन नष्ट हो गया। कहा है कि—

लक्ष्मीः शनैः शनैरेति निर्याति युगपत् पुनः।
षष्ट्या पलैर्जलैः पूर्णा रिच्यते यद्व घटी क्षणात् ॥

'जैसे पानी में रखी हुई घड़ी साठ पलों में धीरे २ जल से भर जाती है और खाली तो एक क्षणमात्र में हो जाती है, वैसे लक्ष्मी भी आहिस्ते २ आती है और जाती है तब एक साथ चली जाती है।'

है, तो भी पूर्व कर्म के प्रभाव से मैं उनको मिलती हूँ व नहीं भी मिलती हूँ। ऐसा होने पर भी मेरा अनिश्चय निश्चय से और शौचाचार के कदाग्रह से यह [illegible] गया है, जिससे उसने चारों वर्णों को मानने योग्य और अपने घर आती हुई मुझको अपने पैर से [illegible] मेरा अतिशय परिचय से इस शुचिवोद की [illegible] गई है, इसलिये अब उसको निर्धन करके इस प्रकार [illegible] करूँ कि जिससे यह पुनः २ मुझे प्राप्त करने के लिये [illegible] शौचाचार का त्याग करके रांक हो जायँ और [illegible] के जूते भी बहुत वार उठावें।' इस प्रकार विचार करके लक्ष्मी ने तुरन्त ही उसका घर छोड़ दिया, [illegible] जाल की तरह उसी समय उसका सब धन नष्ट हो [illegible] कहा है कि—

लक्ष्मीः शनैः शनैरेति निर्याति [illegible]
घट्या पलैर्जलैः पूर्णा रिच्यते [illegible] ॥

'जैसे पानी में रखी हुई घड़ी [illegible] जल से भर जाती है और खाली तो [illegible] जाती है, वैसे लक्ष्मी भी आहिस्ते [illegible] तब एक साथ चली जाती है।'

हुआ चलता २ वह एक दिन शाम को नगर के उपवन समीप आ पहुँचा। बहुत लम्बे मार्ग का अतिक्रमण करने से वह थक गया था तथा क्षुधा, तृषा और चिन्ता के भार से व्याकुल हो गया था, इसलिये वहाँ आडम्बर नाम के यक्ष के मन्दिर में वह रात्रि में रहा, इतने में वहाँ एक मातङ्ग (चाण्डाल) आ करके, आदर पूर्वक यक्ष को प्रणाम करके और उसको पूजा करके द्वार मण्डप में बैठा। वहाँ पूजा के लिये चित्री हुई यक्षिणी की उसने पूजा की और उसके सम्मुख मन्त्र जपा कि जिससे वह तुरन्त प्रगट हो गई। तब मातङ्ग ने कहा—'हे स्वामिनी! जिसमें सब इष्ट वस्तु विद्यमान हों ऐसा एक विलास भुवन अभी ही बना दें।' यक्षिणी ने उसी समय विलासभुवन तैयार कर दिया। इष्ट वस्तु को प्राप्त कर वह मातङ्ग अपने स्वजन और मित्रों के साथ उस भुवन में रह कर चिरकाल पंचेन्द्रिय सुख भोगने लगा। अन्त में कृतकृत्य होकर इन्द्रजाल की तरह उसने वे सब फिर विसर्जन कर दिये।

इस प्रकार मातंग का माहात्म्य देख कर शुचिवोद्र मन में आश्चर्य पाकर धन की आशा से उसकी ही सेवा करने लगा। उसको नमन करे, आसन दे, उसके सम्मुख खड़ा रहे, उसके जूते उठावे और प्रतिदिन उसके पैर दाबे। इस प्रकार निरन्तर उसकी सेवा करते २ तृष्णा

हुआ चलता २ वह एक दिन शाम को नगर के उपवन समीप आ पहुँचा । बहुत लम्बे मार्ग का अतिक्रमण करने से वह थक गया था तथा क्षुधा, तृषा और चिन्ता के भार से व्याकुल हो गया था, इसलिये वहाँ आडम्बर नाम के यक्ष के मन्दिर में वह रात्रि में रहा, इतने में वहाँ एक मातङ्ग (चाण्डाल) आ करके, आदर पूर्वक यक्ष को प्रणाम करके और उसको पूजा करके द्वार मण्डप में बैठा । वहाँ पूजा के लिये चित्री हुई यक्षिणी की उसने पूजा की और उसके सन्मुख मन्त्र जपा कि जिससे वह तुरन्त प्रगट हो गई । तब मातङ्ग ने कहा—'हे स्वामिनी ! जिसमें सब इष्ट वस्तु विद्यमान हों ऐसा एक विलास भुवन अभी ही बना दें ।' यक्षिणी ने उसी समय विलासभुवन तैयार कर दिया। इष्ट वस्तु को प्राप्त कर वह मातङ्ग अपने स्वजन और मित्रों के साथ उस भुवन में रह कर चिरकाल पंचेन्द्रिय सुख भोगने लगा । अन्त में कृतकृत्य होकर इन्द्रजाल की तरह उसने वे सब फिर विसर्जन कर दिये ।

इस प्रकार मातंग का माहात्म्य देख कर शुचिबोद्र मन में आश्चर्य पाकर धन की आशा से उसकी ही सेवा करने लगा । उसको नमन करे. आसन दे. उसके सन्मुख खड़ा रहे. उसके जूते उठावे और प्रतिदिन उसके पैर दाबे । इस प्रकार निरन्तर उसकी सेवा करते २ तृष्णा

से चंचल हुए शुचिवोद्र के शौंचपन का कदाग्रह नष्ट हो गया। एक दिन शुचिवोद्र की बहुत समय की सेवा से प्रसन्न होकर मातंग उसको कहने लगा—'हे भद्र तू ऐसे अयुक्त उपचार क्यों करता है ?' शुचिवोद्र ने कहा—'हे दीनजनों की दया में तत्पर ऐसे हे स्वामिन्! सुनो, दारिद्र्य से दुःखी हुआ मैं धन के लिये बहुत भूमि पर घूमा, परन्तु एक फूटी कौड़ी भी प्राप्त न कर सका। जिससे अन्त में निराश होकर मैंने स्वदेश की ओर प्रस्थान किया। वहाँ देवमन्दिर में आपके बड़े प्रभाव को देख कर धन की आशारूप पाश से बँधा हुआ मैं आपकी सेवा करने लगा हूँ, इसलिये प्रसन्न होकर यह दारिद्र्य रूप बड़े समुद्र में से मेरा उद्धार करें।' ऐसा शुचिवोद्र का वचन सुन कर मातंग उसको कहने लगा—'यक्षिणी की साधना के उपाय वाली यह विद्या तू ले।' ऐसा सुन कर 'बड़ी महरवानी' कह कर उसने विद्या को सहर्ष ग्रहण की। पीछे अपनी आत्मा को कृतार्थ मानता हुआ वह अपने घर गया और वहाँ उसने साधन की सब सामग्री पूर्वक एक मण्डल आलेखा। उसके मध्य में यक्षिणी का चित्र आलेख करके और उसका पूजन करके जितने में वह मन्त्र का स्मरण करता है, इतने में उस का एक पद भूल गया। पीछे शाखा से भ्रष्ट हुए बन्दर की जैसे उदास

मुख करके उसने मातंग के पास जाकर अपना यथास्थित स्वरूप कहा। मातंग ने कहा—'हे भद्र! विद्या से अभिमंत्रित यह पट ग्रहण कर। इस की भी पूजा करेगा तो तुझे इष्ट सिद्धि होगी।' अब मातंग को नमस्कार करके पट लेकर अपने नगर जाते समय रास्ते में शुचिबोद्र का पट चोरों ने छीन लिया। जिससे निस्तेज मुख होकर, वहाँ से ही वापिस लौट कर मातंग के पास आकर के पट का वृत्तान्त कहा। फिर भी अनुकम्पा करके मातंग ने विधिपूर्वक एक विद्या से अभिमंत्रित घट (घड़ा) उसको दिया, तव मातंग को नमस्कार करके घट लेकर वह अपने घर आया और विधि पूर्वक उसका पूजन करके घट के पास से इच्छित पदार्थ याचने लगा। घट में से उसके इच्छित पदार्थ मिले, जिससे उसने अपने सव स्वजन-मित्रों को आदर पूर्वक जिमाया और आप भी पेट भर जीमा। पीछे 'अहो! इस घट के प्रभाव से मेरा दारिद्र्य दूर हुआ।' इस प्रकार खुश हो कर घट को मस्तक पर लेकर नाचने लगा। दर्प से चंचल चित्त होने से इस प्रकार नाचते समय दुर्दैववश उसके मस्तक पर से घट गिर पड़ा और तुरन्त ही उसका खण्ड २ हो गया। घट टूट जाने से शुचिबोद्र मन में बहुत खेद लाकर फिर मातंग के पास गया। तव मातंग ने कहा—'मेरे पास जो विद्याएँ थीं वे

सब तुझे दे चूका हूँ, अब अधिक नहीं है, इसलिये 'हे भद्र! फिर २ मेरे पास नहीं आना।' मातंग ने इस प्रकार कह कर उसको विदा किया जिससे वह अपने घर आया और दुःखित होकर आर्त्तध्यान पूर्वक रात्रि में सो रहा था, इतने में श्वेत वस्त्र वाली एक प्रौढ प्रमदा को देख कर वह उस के सम्मुख गया और प्रणाम कर के उस को पूछने लगा—'हे स्वामिनी! आप कौन हैं?' तब वह बोली कि—'जिस को तूने पैर से फेंक दी थी वह मैं तेरे घर की लक्ष्मी हूँ।' यह सुन कर शुचिवोद्र कहने लगा—'हे मात! इतने लम्बे समय तक आप कहाँ चली गई थीं?' लक्ष्मी ने कहा—'इतने समय तक मैं मातंग के घर गई थी। उसने पूछा—'वह मातंग कौन?' लक्ष्मी ने कहा—'धन की इच्छा से जिसके पीछे घूम २ कर तू जूते उठाता और जिसकी बहुत काल तक सेवा करता था वह मातंग। शुचिवोद्र ने कहा—'तो आज यहाँ आप किसलिये आई हैं?' लक्ष्मी ने कहा—'तेरा शौच देखने के लिये।' ऐसा कह कर लक्ष्मी तुरन्त अदृश्य हो गई। इस प्रकार पहले ग्रहण करके पीछे छोड़ दिये हुए शौच से लज्जा के कारण स्कन्ध को नीचे नमाता हुआ शुचिवोद्र सर्वत्र हास्यास्पद हुआ। लक्ष्मी से रहित होकर वह पश्चात्ताप रूप अग्नि से जलने लगा और जीवन पर्यन्त आजी-

विका से भी वह दुःखी हुआ ।

अब उस लक्ष्मी को श्रीदेव तत्त्व से देव मानता था । कारण कि 'लक्ष्मी ही साक्षात् यहाँ दान भोग और महत्त्व आदि फलों को देती है । उसके सिवा जिनके रोष या तोष के फल यहाँ प्रत्यक्ष देखने में नहीं आते, ऐसे बकरी के गले के रतन के जैसे दूसरे देवों से क्या ?' इस प्रकार कहता हुआ वह दूसरे सब देवों का त्याग कर के प्रमोद पूर्वक पुष्पादिकों से लक्ष्मी की मूर्त्ति का ही त्रिकाल पूजन करता था ।

एक दिन लक्ष्मी को हँसती हुई देख कर श्रीदेव ने पूछा—'हे मात ! हँसने का क्या कारण है ?' लक्ष्मी ने कहा–'तेरा वृत्तान्त ।' उसने पूछा कि—'मेरा क्या वृत्तान्त ?' तब लक्ष्मी देवा ने कहा कि—'जिनके वचन यथास्थित अर्थ वाले है, जिनने आभ्यन्तर शत्रुओं को नष्ट किये हैं, भव्य प्राणियों को जो संसार समुद्र के पार मोक्ष में ले जाने वाले हैं. जिनके चरण कमलों को सुर असुर और राजा भी नमस्कार करते है. जो जगत् के प्राणियों पर करुणायुक्त मन वाले है और जो इसलोक तथा परलोक के सुखों को देने वाले हैं ऐसे देवाधिदेव सर्वज्ञ जिनेश्वर को छोड़ कर तू मेरी स्थिरता की आशा से मुझे आराधता है, परन्तु मेरी स्थिरता तो प्राचीन पुण्य से ही होती

है, मेरी सेवा से नहीं होती।' इस प्रकार लक्ष्मी ने हास्य पूर्वक कहा तब श्रीदेव उसको फिर कहने लगा—'हे मात! आपकी सेवा करते मुझे जो होने वाला हो वह हो।' यह सुन कर लक्ष्मी अदृश्य हो गई।

अब बहुत भक्ति पूर्वक लक्ष्मी का आराधन करते २ कितनेक दिन बाद लक्ष्मी को श्याम मुख वाली देख कर श्रीदेव उसको पूछने लगा—'हे अंब ! आज आपके मुख पर श्यामता क्यों दीख पड़ती है ?' तब लक्ष्मी ने कहा—'हे वत्स ! तेरे घर विलक्षण पुत्र का जन्म हुआ है, उसके विलक्षण दोषों से, तूं अति भक्तिमान् है तो भी तेरे चिरकाल से सेवित गृह को भी मैं छोड़ देने की इच्छा करती हूं। कहा है कि—

मर्त्यो भवति तिर्यङ्वा स कश्चिच्छस्य लक्षणः।
लक्ष्मीर्यदनुभावेन गेहमभ्येति सर्वतः॥
मर्त्यो भवति तिर्यङ् वा स कश्चिदपलक्षणः।
लक्ष्मीर्यदनुभावेन सद्मनोप्यपगच्छति॥

'अच्छे लक्षण वाले कोई तिर्यंच या मनुष्य के प्रभाव से लक्ष्मी चारों ही तरफ से घर में आती है और किसी अपलक्षण वाले मनुष्य या तिर्यंच के प्रभाव से लक्ष्मी

घर में से भी चली जाती है। इसलिये तेरे भावी वियोग से मैं श्याम मुख वाली हो गई हूं।' यह सुन कर श्रीदेव खेद पूर्वक कहने लगा—'अब कहाँ जाओगी?' तब लक्ष्मी ने कहा—'यहीं नगर में पूर्वजन्म में किये हुए मुनिदान के प्रभाव से जिसने अतुल भोग कर्म प्राप्त किया है ऐसे भोगदेव सार्थवाह के घर जाऊँगी।' ऐसा कह कर लक्ष्मी ने शीघ्र ही उसको छोड़ दिया, इसलिये श्रीदेव दुखित हुआ और भोगदेव सार्थवाह सुवर्णादिकों से वृद्धि पाया। अपने घर में चारों ओर लक्ष्मी का विस्तार देखकर भाग्यशाली भोगदेव अपनी भोगवती प्रिया को कहने लगा—'हे कान्ते! विद्युल्लता के जैसी चपल लक्ष्मी जहाँ तक अपने घर में है, वहाँ तक दीन आदि को दान देना और यथेच्छ भोग भोगना।' वह स्त्री तो प्रथम से ही दानशीला थी और इस प्रकार पति ने प्रेरणा की, जिससे विशेष प्रकार मुनि, दुःखी और दीनजनों को श्रद्धापूर्वक इच्छित दान देने लगी।

एक दिन उस नगर के उद्यान में केवली भगवंत समवसरे (पधारे), इसलिये श्रद्धालु मन वाले अनेक लोग उनको वन्दन करने गये। अपनी भोगवती पत्नी के साथ भोगदेव भी वहाँ आया। सब लोग वन्दन करके बैठे तब केवली भगवान् धर्मोपदेश देने लगे—

घर में से भी चली जाती है। इसलिये तेरे भावी वियोग से मैं श्याम मुख वाली हो गई हूं।' यह सुन कर श्रीदेव खेद पूर्वक कहने लगा—'अब कहाँ जाओगी?' तब लक्ष्मी ने कहा—'यहीं नगर में पूर्वजन्म में किये हुए सुनिदान के प्रभाव से जिसने अतुल भोग कर्म प्राप्त किया है ऐसे भोगदेव सार्थवाह के घर जाऊँगी।' ऐसा कह कर लक्ष्मी ने शीघ्र ही उसको छोड़ दिया. इसलिये श्रीदेव दुखित हुआ और भोगदेव सार्थवाह सुवर्णादिकों से वृद्धि पाया। अपने घर में चारों ओर लक्ष्मी का विस्तार देखकर भाग्यशाली भोगदेव अपनी भोगवती प्रिया को कहने लगा—'हे कान्ते! विद्युल्लता के जैसी चपल लक्ष्मी जहाँ तक अपने घर में है, वहाँ तक दीन आदि को दान देना और यथेच्छ भोग भोगना।' वह स्त्री तो प्रथम से ही दानशीला थी और इस प्रकार पति ने प्रेरणा की, जिससे विशेष प्रकार मुनि, दुःखी और दीनजनों को श्रद्धापूर्वक इच्छित दान देने लगी।

एक दिन उस नगर के उद्यान में केवली भगवंत समवसरे (पधारे). इसलिये श्रद्धालु मन वाले अनेक लोग उनको वन्दन करने गये। अपनी भोगवती पत्नी के साथ भोगदेव भी वहाँ आया। सब लोग वन्दन करके बैठे तब केवली भगवान् धर्मोपदेश देने लगे—

ऋद्धि वाला संचलशील नाम का सार्थवाह रहता है, उस के घर में तेरह कोटि धन है, परन्तु वह बँधीमुठी (कृपण) होने से कभी किसी को एक कौड़ी भी नहीं देता है और भोगता भी नहीं है। उसके घर में एक दुर्गतपताक नाम का नौकर है. वह तुझे दान का माहात्म्य स्पष्ट कहेगा।' इस प्रकार केवली भगवन्त का वचन सुन कर और आश्चर्य पाकर हृदय में विचार करने लगा— 'किसी कारण से ही यह सर्वज्ञ होने पर भी इस प्रकार कहते हैं। इसलिये वह नगर तो बहुत दूर होने पर भी प्रिया सहित वहाँ जाकर के इस प्रश्न का उत्तर मैं प्राप्त करूँ।' कौतुकी लोग आलसी नहीं होते।

पीछे प्रश्न के अर्थ को जानने के लिये उत्सुक भोगदेव अपनी पत्नी के साथ तुरन्त ही वहाँ से प्रस्थान करके विशालशाल नगर में आ पहुंचा। दैवयोग से नगर में प्रवेश करते समय दुर्गतपताक की दुर्गिला नाम की स्त्री को उन्होने देखा तब उसको पूछा कि—'यहाँ संचयशील नाम के सार्थवाह का घर कहाँ है ? उसने कहा—'यहाँ आओ, मै आपको उसका घर बतलाऊँ।' पीछे भोगदेव उसके साथ संचयशील सार्थवाह के घर आकर और आदरपूर्वक नमस्कार करके धनसुन्दरी नाम की उसकी स्त्री से पूछा— 'आपके घर दुर्गतपताक नाम का कोई नौकर है ?' उसने

दुर्यश को प्राप्त करके, पृथ्वी को भारभूत ऐसी इस लक्ष्मी का आप क्या करेंगे ?' ऐसा सुनकर खेद पूर्वक सेठ विचारने लगा—'यह स्त्री मेरे मन के अनुकूल वर्त्तने वाली नहीं है. इसलिये धन प्राप्त करने के कष्टों को वह किंचित् भी नहीं जानती। स्वजन और याचकों की अत्यन्त याचना से भी मेरा मन एक कौड़ी मात्र भी देना नहीं चाहता। यह खर्चीली स्त्री तो धन कमाने के क्लेश से अनभिज्ञ है, इसलिये पुण्य कार्यों में और वधाई आदि में गुप्त रीति से धन का व्यय करेगी। जैसे पानी में रही हुई मछली कब पानी पीती है यह नहीं समझ सकते, वैसे घर की स्वामिनी पत्नी कब और क्या व्यय करती है वह भी समझ नहीं सकते। घर की रक्षा में नियुक्त की हुई पत्नी अपनी इच्छानुकूल धन का व्यय करके घर को खोदे तो अवश्य 'वाड़ ककड़ी को खाय' ऐसा न्याय होगा। इस भिन्न स्वभाव वाली स्त्री के सहवास में स्वभाव से ही चपल लक्ष्मी को मैं घर में किस प्रकार स्थिर कर सकूंगा ?' इस प्रकार अत्यन्त आर्त्तध्यान के वश से उसको आहार विशूचिका (हैज़ा) हुई, जिससे वह सार्थवाह उसी दिन मर गया। पति के मरण से उत्पन्न हुई धनसुन्दरी के हृदय में जलती शोकाग्नि, पुत्र दर्शन से आते हुए हर्षाश्रुरूप जल से शनैः २ शान्त हो गई।

दुर्यश को प्राप्त करके, पृथ्वी को भारभूत ऐसी इस लक्ष्मी का आप क्या करेंगे ?' ऐसा सुनकर खेद पूर्वक सेठ विचारने लगा—'यह स्त्री मेरे मन के अनुकूल वर्त्तने वाली नहीं है, इसलिये धन प्राप्त करने के कष्टों को वह किंचित् भी नहीं जानती। स्वजन और याचकों की अत्यन्त याचना से भी मेरा मन एक कौड़ी मात्र भी देना नहीं चाहता। यह खर्चीली स्त्री तो धन कमाने के क्लेश से अनभिज्ञ है, इसलिये पुण्य कार्यों में और वधाई आदि में गुप्त रीति से धन का व्यय करेगी। जैसे पानी में रही हुई मछली कब पानी पीती है यह नहीं समझ सकते, वैसे घर की स्वामिनी पत्नी कब और क्या व्यय करती है वह भी समझ नहीं सकते। घर की रक्षा में नियुक्त की हुई पत्नी अपनी इच्छानुकूल धन का व्यय करके घर को खोदे तो अवश्य 'बाड़ ककड़ी को खाय' ऐसा न्याय होगा। इस भिन्न स्वभाव वाली स्त्री के सहवास में स्वभाव से ही चपल लक्ष्मी को मैं घर में किस प्रकार स्थिर कर सकूंगा ?' इस प्रकार अत्यन्त आर्त्तध्यान के वश से उसको आहार विशूचिका (हैज़ा) हुई, जिससे वह सार्थवाह उसी दिन मर गया। पति के मरण से उत्पन्न हुई धनसुन्दरी के हृदय में जलती शोकाग्नि, पुत्र दर्शन से आते हुए हर्षाश्रुरूप जल से शनैः २ शान्त हो गई।

दुर्यश को प्राप्त करके, पृथ्वी को भारभूत ऐसी इस लक्ष्मी का आप क्या करेंगे ?' ऐसा सुनकर खेद पूर्वक सेठ विचारने लगा—'यह स्त्री मेरे मन के अनुकूल वर्त्तने वाली नहीं है, इसलिये धन प्राप्त करने के कष्टों को वह किंचित् भी नहीं जानती। स्वजन और याचकों की अत्यन्त याचना से भी मेरा मन एक कौड़ी मात्र भी देना नहीं चाहता। यह खर्चीली स्त्री तो धन कमाने के क्लेश से अनभिज्ञ है, इसलिये पुण्य कार्यों में और बधाई आदि में गुप्त रीति से धन का व्यय करेगी। जैसे पानी में रही हुई मछली कब पानी पीती है यह नहीं समझ सकते, वैसे घर की स्वामिनी पत्नी कब और क्या व्यय करती है वह भी समझ नहीं सकते। घर की रक्षा में नियुक्त की हुई पत्नी अपनी इच्छानुकूल धन का व्यय करके घर को खोदे तो अवश्य 'बाड़ ककड़ी को खाय' ऐसा न्याय होगा। इस भिन्न स्वभाव वाली स्त्री के सहवास में स्वभाव से ही चपल लक्ष्मी को मैं घर में किस प्रकार स्थिर कर सकूंगा ?' इस प्रकार अत्यन्त आर्त्तध्यान के वश से उसको आहार विशूचिका (हैज़ा) हुई, जिससे वह सार्थवाह उसी दिन मर गया। पति के मरण से उत्पन्न हुई धनसुन्दरी के हृदय में जलती शोकाग्नि, पुत्र दर्शन से आते हुए हर्षाश्रुरूप जल से शनैः २ शान्त हो गई।

एक दिन अतिशय युक्त ज्ञान वाले कोई मुनि भिक्षा के लिये वहां पधारे। उसने सहर्ष ऊपर के श्लोक को बोलते हुए उस बालक से इस प्रकार कहा—'हे बाल! तू इस प्रकार एकान्त हर्ष न कर, कारण कि धन होने पर भी दान और भोग से रहित ऐसा तेरा पिता मर करके यहाँ ही नागिल दरिद्री के घर में पुत्र रूप से जन्मा है। वह बहुत-दुःखी है, क्षुधा से पीड़ित है और मा बाप को भी अप्रिय हो गया है जिससे दुःख पूर्वक दिन व्यतीत करता है। जिसने प्राप्त किये हुए धन को ग़रीबों को नहीं दिया और स्वयं भी उपभोग नहीं किया, परन्तु पृथ्वी में गाड़ रक्खा, वह पुरुष अवश्य ही दोनों लोकों के सुखों से भ्रष्ट होता है। देखो! नौकर था वह सेठ हुआ और सेठ था वह नौकर हुआ। इस कर्मरचना को असम्भाव्य कौन माने?' इस प्रकार अपने पति का वृत्तान्त सुन कर धर्मसुन्दरी बहुत दुःखी हुई। पीछे तुरन्त ही पत्नी और पुत्र सहित नागिल को बुलवा करके वह कहने लगी—'तुम दोनों हमेशा मेरे घर का काम काज करो और स्नान तथा अशन (भोजन) आदि से स्नेह पूर्वक इस पुत्र का पालन करो। यह तुम्हारा पुत्र बड़ा होगा तब घर का काम करने वाला होगा।' ऐसा उसका कहना स्वीकार करके वे दोनों सुख पूर्वक वहाँ रहने लगे।

हुई शत्रु की स्त्री की तरह निरन्तर निरोध से उद्वेग पा करके मैं
हाँ दुःख पूर्वक निवास करती हूँ। बहिन! सुख तो मुझे
हाँ से हो?

इस प्रकार उन दोनों के वार्त्तालाप सुनकर भोगदेव
चारने लगा—'अवश्य! अपने २ स्थान से अभी ये दोनो
क्ष्मी उद्विग्न हुई है। यदि ऐसा न होता तो संग्रह करने
ने संचयशील के और व्यय करने वाले मेरे, ऐसे हम
ों के दूषणो को लक्ष्मी क्यों देखती? भोग से, शांच
क्ति से या संग्रह से भी यह चपल लक्ष्मी कभी स्थिर
होती, जिससे उसका दान करना ही श्रेष्ठ है। इस
स्वभाव से ही चपल लक्ष्मी मुझे जब तक न छोड़
र तक सुपात्रों में व्यय करके इसके फल को मैं
कर लेऊँ।'

अब वहाँ से अपने नगर में आ करके, चैत्यों में अट्टाई
र करके तथा आदर पूर्वक चतुर्विध संघ की पूजा
अनाथ दीन दुःखी जनों को उचित दान दे करके
मित्र स्वजन बन्धुओं की सन्मान पूर्वक आज्ञा ले
अपने भोगदत्त नाम के पुत्र के ऊपर कुटुम्ब का
न करके, जिसके शुभ ध्यान के अध्यवसाय बढ़े
जिसकी बुद्धि [illegible] गई है और मैं दल दीक्षा
[illegible] मन में संकल्प कर लिया

एक दिन रात्रि के समय अपने मकान में भोगदेव ने दो सुन्दरियों को परस्पर वार्त्तालाप करते हुए सुना।

पहली—'हे सुंदरि! तू कौन है? वह कह।'

दूसरी—'हे शुभे! मैं भोगदेव की गृहलक्ष्मी हूँ।'

पहली—'हे बहन! तुझे कुशल है?'

दूसरी—(दुःखपूर्वक निःश्वास ले करके) 'हे बहिन! दूसरे को दान देने में और भोगादि कार्यों में मन को लगा करके, भोगदेव निरन्तर मुझे घुमाता रहता है, तो आज्ञा-प्रधान भर्त्तार की दासी की तरह पराधीन स्वभाव वाली मेरी कुशलता की क्या कथा परन्तु बहि
कौन है? वह तो कह।'

पहली—'मैं दोनों गुण से
वाली होने से) के
लक्ष्मी हूँ।'

दूसरी—'बहिन! तू रहती

पहली—(सखेद)
. उसने गाड़ रक्खी
होने बाद, मैं सूर्य चन्द्र और
करने के योग्य हुई हूँ। बन्दी

हुई शत्रु की स्त्री की तरह निरन्तर निरोध से उद्वेग पा करके मैं यहाँ दुःख पूर्वक निवास करती हूँ। बहिन! सुख तो मुझे कहाँ से हो?

इस प्रकार उन दोनों के वार्त्तालाप सुनकर भोगदेव विचारने लगा—'अवश्य! अपने २ स्थान से अभी ये दोनों लक्ष्मी उद्विग्न हुई है। यदि ऐसा न होता तो संग्रह करने वाले संचयशील के और व्यय करने वाले मेरे, ऐसे हम दोनों के दूषणों को लक्ष्मी क्यों देखती? भोग से, शौच से, भक्ति से या संग्रह से भी यह चपल लक्ष्मी कभी स्थिर नहीं होती. जिससे उसका दान करना ही श्रेष्ठ है। इसलिये स्वभाव से ही चपल लक्ष्मी मुझे जब तक न छोड़ दे, तब तक सुपात्रों में व्यय करके इसके फल को मैं प्राप्त कर लेउं।'

अब वहाँ से अपने नगर मे आ करके, चैत्यों में अट्ठाई महोत्सव करके तथा आदर पूर्वक चतुर्विध संघ की पूजा करके, अनाथ दीन दुःखी जनों को उचित दान दे करके, अपने मित्र स्वजन बन्धुओं की सन्मान पूर्वक आज्ञा ले करके, अपने भोगदत्त नाम के पुत्र के ऊपर कुटुम्ब का भार डाल करके, जिसके शुभ ध्यान के अध्यवसाय बढ़ते जाते है, जिसकी बुद्धि विशुद्ध हो गई है और 'मैं दीक्षा अङ्गीकार करूँगा' ऐसा जिसने मन में संकल्प कर लिया

हुई शत्रु की स्त्री की तरह निरन्तर निरोध से उद्वेग पा करके मैं यहाँ दुःख पूर्वक निवास करती हूँ। बहिन! सुख तो मुझे कहाँ से हो?

इस प्रकार उन दोनों के वार्त्तालाप सुनकर भोगदेव विचारने लगा—'अवश्य! अपने २ स्थान से अभी ये दोनों लक्ष्मी उद्विग्न हुई है। यदि ऐसा न होता तो संग्रह करने वाले संचयशील के और व्यय करने वाले मेरे, ऐसे हम दोनों के दूषणों को लक्ष्मी क्यों देखती? भोग से, शौच से,भक्ति से या संग्रह से भी यह चपल लक्ष्मी कभी स्थिर नहीं होती, जिससे उसका दान करना ही श्रेष्ठ है। इस-लिये स्वभाव से ही चपल लक्ष्मी मुझे जब तक न छोड़ दे, तब तक सुपात्रों में व्यय करके इसके फल को मैं प्राप्त कर लेऊँ।'

अब वहाँ से अपने नगर मे आ करके, चैत्यों में अट्टाई महोत्छव करके तथा आदर पूर्वक चतुर्विध संघ की पूजा करके, अनाथ दीन दुःखी जनों को उचित दान दे करके, अपने मित्र स्वजन बन्धुओं की सन्मान पूर्वक आज्ञा ले करके, अपने भोगदत्त नाम के पुत्र के ऊपर कुटुम्ब का भार डाल करके, जिसके शुभ ध्यान के अध्यवसाय बढ़ते जाते है, जिसकी बुद्धि विशुद्ध हो गई है और 'मैं रत्न दीक्षा अङ्गीकार करूँगा' ऐसा जिसने मन में संकल्प कर लिया

वह कष्ट से समय व्यतीत करता था। अब जिस पुत्र के जन्म के कारण उसके घर से लक्ष्मी स्वयं कह कर चली गई थी, उस विलक्षण पुत्र का दैवयोग से मरण हो गया, जिससे फिर पुण्योदय से लक्ष्मी उसके घर में आई और स्वजन बंधुओं में भी वह माननीय हो गया। अब पुनः संपत्ति प्राप्त हुई जिससे धन के उन्माद से और इच्छापूर्वक प्राप्त हुए भोग के साधनों से वह दूसरी स्त्री से विवाह किया। कहा है कि—

प्रवर्द्धमानः पुरुषस्त्रयाणामपघातकः।
पूर्वोपार्जितमित्राणां दाराणामथ वेश्मनाम्॥

लक्ष्मी से बढ़ता हुआ पुरुष, पूर्व परिचित मित्र, स्त्रियें और घर इन तीनों का घातक होता है अर्थात् ये तीन नवीन करने की उसको इच्छा होती है।

एकदिन फिर रात्रि में अच्छी सुख शय्या में सोते हुए श्री देव ने रुदन करती हुई किसी स्त्री को देखकर उसको पूछा—'तू कौन है? और किस कारण से ऐसे दुःख पूर्वक रोती है?' वह कहने लगी—'मैं तुम्हारे घर की लक्ष्मी हूं और अभी तुम्हारे घर का फिर त्याग करना चाहती हूं। कारण कि हे श्रीदेव! तू जो दूसरी

काय के लिये प्रतिबन्ध रहित होकर उसका उपभोग करते हैं। रोष पूर्वक पैर से ठुकराती हुई लक्ष्मी ने शुचिवोद्र को छोड़ दिया, एवं उसकी निरन्तर पूजा करने वाले श्रीदेव को भी कारण बतला करके छोड़ दिया, उष्ण वायु से भी रक्षण करने वाले संचयशील को उसने छोड़ दिया और इच्छित दान देने वाले और भोगने वाले भोगदेव को भी छोड़ दिया। इसलिये उछलते हुए जलतरङ्गों की जैसी चपल लक्ष्मी को स्थिर करने के लिये जगत् में कोई भी उपाय विद्यमान नहीं है। जो दान नहीं देता और भोगता भी नहीं वह पुरुष अपने पास धन होने पर भी संचयशील के जैसे दरिद्र है। इस जगत् में सचयशील के जैसे बहुत मनुष्य हैं कि जिनको ठग करके लक्ष्मी ने अपना दासकर्म करवाया है। परन्तु भोगदेव जैसे पुरुष तो मात्र गिनती के होंगे, कि जिसने स्वेच्छापूर्वक उसका दान और भोग करके लक्ष्मी को ही ठगली हो। लक्ष्मी को स्वयं भोगता है और दूसरे को श्रद्धा से देता है तथा देने वाले की अनुमोदना करता है, वह पुरुष भोगदेव की जैसे दोनों लोक में सुख प्राप्त करता है। घर में से लक्ष्मी अपने आप चली जाय तो बड़ा भारी दुःख होता है। परन्तु लक्ष्मी को ही छोड़ दी जाय तो पुण्यों को वह अनन्त सुखों का कारण हो सकती है। पुनः हे वत्सो! आधि.व्याधि.व्यथा

ॐ चतुर्थ उल्लास ॐ

गणेशों (गणधरों) से सेवनीय, कामदेव के भेदक, कैलाश (अष्टापद) के स्वामी, वृषभलांछन से लांछित और शाश्वत सुख के करने वाले (शंकर) पवित्र श्रीयुगादिनाथ (महादेव) तुमको संपत्ति के लिये हो।

अब अवंती देश का स्वामी और ऋषभदेव स्वामी का अवन्ती नाम का प्रख्यात पुत्र इस समय अंजली लगा कर, प्रभु को प्रणाम करके इस प्रकार कहने लगा—"हे भगवंत! समस्त जगत् के प्राणियों के हितकारक आपने सब संग का त्याग करके शुद्ध संयम की आराधना करने से मोक्ष की प्राप्ति बतलाई, परन्तु यह बिलकुल सत्य होने पर भी कितनेक प्राणी तंदुलमत्स्य की तरह अनादि भव के अभ्यास से विषयों की इच्छा रखते हैं, तो पूर्व पुण्य के उदय से बिना परिश्रम प्राप्त हुए इन दिव्य भोगों को हम एक साथ कैसे छोड़ सकें?" पुत्र का ऐसा कहना सुनकर उनको प्रतिबोधने के लिये उद्यत हुए भगवंत सुधा सदृश मधुर वाणी से इनसे कहने

❀ चतुर्थ उल्लास ❀

गणेशों (गणधरों) से सेवनीय, कामदेव के भेदक, कैलाश (अष्टापद) के स्वामी, वृषभलांछन से लांछित और शाश्वत सुख के करने वाले (शंकर) पवित्र श्रीयुगादिनाथ (महादेव) तुमको संपत्ति के लिये हो।

अब अवंती देश का स्वामी और ऋषभदेव स्वामी का अवन्ती नाम का प्रख्यात पुत्र इस समय अंजली लगा कर, प्रभु को प्रणाम करके इस प्रकार कहने लगा—'हे भगवंत! समस्त जगत् के प्राणियों के हितकारक आपने सब संग का त्याग करके शुद्ध संयम की आराधना करने से मोक्ष की प्राप्ति बतलाई. परन्तु यहाँ बिलकुल अप्राप्य होने पर भी कितनेक प्राणी तंदुलमत्स्य की तरह अनादि भव के अभ्यास से विषयों की इच्छा रखते हैं, तो पूर्व पुण्य के उदय से बिना परिश्रम प्राप्त हुए इन विषय भोगों को हम एक साथ कैसे छोड़ सकें!' पुत्र का ऐसा कहना सुनकर उनको प्रतिबोधने के लिये उद्यम वाले भगवंत सुधा सदृश मधुर वाणी से उनके आगे विषयों

पुरुषों को दुःखकारी विषय भी सुखकारी लगते हैं। बहुत काल पीछे भी जिससे दुःख प्राप्त होता है या जो क्षण वार में विनाश हो जाता है और जिसके अन्त में मृत्यु अवश्य है उसको सुख कैसे कहा जाय? विष से भी विषय विशेष बड़ जाते हैं, कारण कि विष से तो प्राणी एक ही वार मरता हैं. परन्तु विषयो से तो अनन्त वार मरता है,। जब एक २ इन्द्रिय के विषय से भी पतंग आदि जीव मरण पाते हैं तो एक साथ पांच इन्द्रियों का सेवन करने वाले मनुष्यों को मृत्यु प्राप्त हो इसमें आश्चर्य क्या? अर्थात् मृत्यु तो निश्चय ही है। हे वत्सो! पंचेन्द्रियों के विषयों में अत्यन्त आसक्ति रखने वाले पुरुषों को इस-लोक और परलोक में भयंकर दुःख प्राप्त होते हैं। इस विषय पर एक कथा कहता हूं उसको सुनो—

कलिंग देश में बड़े २ प्रासाद श्रेणी से सुशोभित और सुवर्णमणि मोतियों से युक्त ऐसा सुवर्णपुर नाम का नगर था। वहां राजा और मंत्रि आदि को माननीय, धन का दान करने में और दया में दक्ष तथा दाक्षिण्य (सरल) आदि गुणों का स्थान ऐसा सुमंगल नाम का सेठ रहता था। उसको स्वामी आदि के विनय में तत्पर और गृह-कार्य में कुशल ऐसी जयावली नाम की प्रेमपात्र पत्नी थी।

पर आये। नगर में समान मानने लायक, समान स्वजन और लक्ष्मी वाले तथा दान से दुर्ललित मदोन्मत हाथी जैसे निरंकुश, कवच पहरे हुए सशस्त्र अपने २ स्वामीभक्त योद्धाओं के साथ ये दोनो एक कन्या की आशा से परस्पर युद्ध करने लगे। बड़े २ गृहस्थ महाजनों ने उनको युक्ति पूर्वक समझाया किन्तु अहंकार के कारण वे युद्ध से पीछे न हटे। चारो ओर योद्धाओं का भयंकर युद्ध होने से किंकर्त्तव्यता से घबराया हुआ सुमंगल सेठ उस समय बड़ी भेट लेकर स्वजनों के साथ राजा के पास गया और भेंट करके विनय पूर्वक अपना वृत्तान्त कहने लगा—'हे देव! आप लग्नमण्डप में मेरे घर पधारें, कि जिससे उन दोनों के कलह का नाश हो। आपके आये विना अन्य किसी प्रकार शान्ति नहीं होगी।' प्रजा पर प्रेम भाव होने से सेठ का वचन स्वीकार कर, राजा तुरन्त लग्नमण्डप में आया और एक अच्छे पलंग पर बैठा। तब सुमंगल सेठ राजा के पैर पड़ कर अपनी पुत्री को दिखाता हुआ मन्त्री सामन्तों के समक्ष इस प्रकार विनति करने लगा—'हे स्वामी! स्वेच्छा से इन दोनों वरों में से किसी भी वर को यह कन्या दो, कारण कि आपकी आज्ञा मे विचार करने को नहीं होता, आपकी आज्ञा सब को माननीय है।' सेठ की इस प्रकार विनती सुनने ५

कला युक्त राजा को भी जिसने व्याकुल कर डाला है। कहा है कि—

विकलयति कलाकुशलं हसति
शुचिं पण्डितं विडम्बयति।
अधरयति धीरपुरुषं क्षणेन
मकरध्वजो देवः॥

मकरध्वज (कामदेव) कलाकुशल मनुष्यों को हृदय शून्य कर देता है, पवित्रता को हँसता है, पण्डितपुरुषों को दुःखी करता है और धीर पुरुषों को एक क्षणमात्र में नीचे गिरा देता है।

अब सेवा के लिये आये हुए मन्त्री ने ऐसी स्थिति में रहे हुए राजा को देखकर पूछा—'हे स्वामिन्! आज आप उदास कैसे मालूम होते हैं?' तब राजा ने कहा—'हे महामन्त्री! कामदेव के बाणों से पीड़ित हुए मुझे उस सेठ की कन्या का स्मरण है या तो मरने का शरण है।' इस प्रकार सुनकर प्रधान विचार करने लगा कि—'चिन्ता, संगेच्छा, निःश्वास, ज्वर, अंग में दाह, अन्न पर अरुचि, मूर्छा, उन्माद, प्राणसन्देह और मरण ये दश कामीजनों की अवस्था हैं। इसलिये प्रथम राजा को युक्ति से आश्वासन देकर पीछे

हृदय में विचार करके जो योग्य समझो वह करो।' मंत्री के ऐसे वचन सुनकर सेठ बोला—'मेरा प्राण भी राजा के आधीन है तो पीछे पुत्री की तो क्या बात है? इसलिये राजा उसको खुशी से परणें।' ऐसा सेठ ने मन्त्री को कहा तब मन्त्री राजा के पास जाकर कार्यसिद्धि कहा। पीछे तुरन्त ही गान्धर्व विवाह से राजा ने उसका पाणिग्रहण किया और रूप लावण्य और सौभाग्य से प्रसन्न मन वाले राजा ने उस सुंदरी को ही समस्त अन्तःपुर की अधिकारिणी करदी।

अब महातेजस्वी राजा ने जब से उस कन्या का पाणिग्रहण किया तब से कुबेर सेठ के पुत्र ने उसकी आशा छोड़ दी. परन्तु कामान्ध सुंदर तो वह राजा को विवाही गई, तो भी शेषनाग के मस्तक पर रही हुई दुष्प्राप्य मणि की तरह उसको इच्छता ही रहा। रागरूप अन्धकार के पडल से आन्तरलोचन जिसके बन्द हो गये हैं, ऐसे वह अपने भावी अशुभ को नहीं देख सका। कहा है कि—

नहि पश्यति जात्यन्धः कामान्धो नैव पश्यति।
न पश्यति मदोन्मत्तो दोषमर्थी न पश्यति॥
न पश्यति दिवा घूकः काको नक्तं न पश्यति।
कामांधःकोऽपि पापीयान् दीवा नक्तं न पश्यति॥

हृदय में विचार करके जो योग्य समझो वह करो।' मंत्री के ऐसे वचन सुनकर सेठ बोला—'मेरा प्राण भी राजा के आधीन है तो पीछे पुत्री की तो क्या बात है? इसलिये राजा उसको खुशी से परणें।' ऐसा सेठ ने मन्त्री को कहा तब मन्त्री राजा के पास जाकर कार्यसिद्धि कहा। पीछे तुरन्त ही गान्धर्व विवाह से राजा ने उसका पाणिग्रहण किया और रूप लावण्य और सौभाग्य से प्रसन्न मन वाले राजा ने उस सुंदरी को ही समस्त अन्तःपुर की अधिकारिणी करदी।

अब महातेजस्वी राजा ने जब से उस कन्या का पाणिग्रहण किया तब से कुबेर सेठ के पुत्र ने उसकी आशा छोड़ दी, परन्तु कामान्ध सुंदर तो वह राजा को विवाही गई, तो भी शेषनाग के मस्तक पर रही हुई दुष्प्राप्य मणि की तरह उसको इच्छता ही रहा। रागरूप अन्धकार के पडल से ज्ञानरलोचन जिसके बन्द हो गये हैं, ऐसे वह अपने भावी अशुभ को नहीं देख सका। कहा है कि—

नहि पश्यति जात्यन्धः कामान्धो नैव पश्यति।
न पश्यति मदोन्मत्तो दोषमर्थी न पश्यति॥
न पश्यति दिवा घूकः काको नक्तं न पश्यति।
कामांधः कोऽपि पापीयान् दिवा नक्तं न पश्यति॥

'जन्मान्ध पुरुष नहीं देख सकता, कामान्ध तो देख ही नहीं सकता, मदोन्मत्त नहीं देखता, स्वार्थी दोषों को नहीं देखता। दिन में उल्लू पक्षी देख नहीं सकता, कौआ रात्रि में देख नहीं सकता और कामान्ध मनुष्य तो ऐसा पापी है कि वह दिन या रात्रि को भी देख नहीं सकता।' इस प्रकार होने से कामदेव के वशीभूत हुआ है आत्मा जिसका ऐसा वह सुन्दर दूसरी सब क्रियाओं को छोड़कर सर्वदा सुन्दरी के संगम का उपाय विचारने लगा।

एक दिन सुन्दरी की दासी उसको एकान्त में मिली, तब अपने स्वार्थ के लिये उसने वस्त्र अलंकार और तांबूल से उसका बहुत सत्कार किया। इसलिये सुन्दरी के पास जाकर उसने सुन्दर का ऐसा वर्णन किया कि जिससे वह उस पर अत्यन्त अनुरागवाली हो गई। और अपनी दासी को कहने लगी कि—'हे सखि! यदि सुन्दर स्त्री के वेष से किसी प्रकार आवे तो [illegible] था।' फिर दासी ने जाकर [illegible] कहा कि—'हे देव! [illegible] आप को [illegible] है [illegible] होती [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

के साथ क्रीड़ा करते करते एक क्षण की तरह सुंदर ने बहुत दिन व्यतीत किये ।

एक दिन सुन्दरी ने उसको कहा कि—'मेरे लिये यम के घर जैसे इस राजमहल मे तू हमेशा आता है, तो मेरे शरीर में तूने ऐसी क्या अधिकता देखी है ? फिर अत्यन्त विषय में आसक्त होकर यहाँ संकट मे आते समय जैसे विलाव दूध को देखता है परन्तु लकड़ी को नही देखता, वैसे तू संकट को नही देखता ?' ऐसा वचन सुन कर कुछ हँस करके सुन्दर कहने लगा—'हे सुन्दरी ! सुन, गुण की अधिकता विना यम के मुख मे कौन प्रवेश करे ? यदि अच्छे गोल और अमृत को झरने वाले ऐसे शरदृऋतु का चन्द्रमण्डल भी अकलंक हो जाय तब ही तेरे मुख की तुलना के योग्य हो अर्थात् निष्कलंक चन्द्रमण्डल के जैसा तेरा मुख है । कान पर्यन्त विशाल और जिसमे दो कृष्ण तारे शोभायमान हैं ऐसे तेरे नेत्र हैं, मानो भीतर भ्रमर छुप रहे हों, ऐसे दो कमल मालूम होते है । जिसमें जाति-वन्त चन्दन, कर्पूर और कस्तूरी की अच्छी सुगन्ध है ऐसा तेरा श्वास वायु है, वह हे सुभ्रु ! अल्प पुण्य वाले कभी भी प्राप्त नहीं कर सकते । अमृत अवश्य पातालकुण्ड में है, ऐसे कवि लोग कहते है, परन्तु वस्तुतः वह अमृत तो तेरी जिह्वा के अग्रभाग पर और तेरे अधर (होंठ) पर है ।

के साथ क्रीड़ा करते करते एक क्षण की तरह सुंदर ने बहुत दिन व्यतीत किये।

एक दिन सुन्दरी ने उसको कहा कि—'मेरे लिये यम के घर जैसे इस राजमहल मे तू हमेशा आता है, तो मेरे शरीर में तूने ऐसी क्या अधिकता देखी है ? फिर अत्यन्त विषय में आसक्त होकर यहाँ संकट मे आते समय जैसे विलाव दूध को देखता है परन्तु लकड़ी को नहीं देखता, वैसे तू संकट को नहीं देखता ?' ऐसा वचन सुन कर कुछ हँस करके सुन्दर कहने लगा—'हे सुन्दरी ! सुन, गुण की अधिकता विना यम के मुख मे कौन प्रवेश करे ? यदि अच्छे गोल और अमृत को झरने वाले ऐसे शरद्ऋतु का चन्द्रमण्डल भी अकलंक हो जाय तब ही तेरे मुख की तुलना के योग्य हो अर्थात् निष्कलंक चन्द्रमण्डल के जैसा तेरा मुख है। कान पर्यन्त विशाल और जिनमें दो कृष्ण तारे शोभायमान है ऐसे तेरे नेत्र हैं, मानो भीतर भ्रमर छुप रहे हों, ऐसे दो कमल मालूम होते हैं। जिसमें जातिवन्त चन्दन, कर्पूर और कस्तूरी की अच्छी सुगन्ध है ऐसा तेरा श्वास वायु है, वह हे सुभ्रु ! अल्प पुण्य वाले कभी भी प्राप्त नहीं कर सकते। अमृत अवश्य पातालकुण्ड में है, ऐसे कवि लोग कहते है, परन्तु वस्तुतः वह अमृत तो तेरी जिह्वा के अग्रभाग पर और तेरे अधर (होंठ) पर है।

के साथ क्रीड़ा करते करते एक क्षण की तरह सुंदर ने बहुत दिन व्यतीत किये।

एक दिन सुन्दरी ने उसको कहा कि—'मेरे लिये यम के घर जैसे इस राजमहल मे तू हमेशा आता है, तो मेरे शरीर में तूने ऐसी क्या अधिकता देखी है? फिर अत्यन्त विषय में आसक्त होकर यहाँ संकट मे आते समय जैसे विलाव दूध को देखता है परन्तु लकड़ी को नहीं देखता, वैसे तू संकट को नही देखता?' ऐसा वचन सुन कर कुछ हँस करके सुन्दर कहने लगा—'हे सुन्दरी! सुन, गुण की अधिकता विना यम के मुख में कौन प्रवेश करे? यदि अच्छे गोल और अमृत को झरने वाले ऐसे शरदृऋतु का चन्द्रमण्डल भी अकलंक हो जाय तब ही तेरे मुख की तुलना के योग्य हो अर्थात् निष्कलंक चन्द्रमण्डल के जैसा तेरा मुख है। कान पर्यन्त विशाल और जिसमें दो कृष्ण तारे शोभायमान है ऐसे तेरे नेत्र हैं, मानो भीतर भ्रमर छुप रहे हों, ऐसे दो कमल मालूम होते हैं। जिसमें जातिवन्त चन्दन, कर्पूर और कस्तूरी की अच्छी सुगन्ध है ऐसा तेरा श्वास वायु है, वह हे सुभ्रु! अल्प पुण्य वाले कभी भी प्राप्त नहीं कर सकते। अमृत अवश्य पातालकुण्ड में है, ऐसे कवि लोग कहते है, परन्तु वस्तुतः वह अमृत तो तेरी जिह्वा के अग्रभाग पर और तेरे अधर (होंठ) पर है।

नहीं मारेगा, परन्तु तेरा वियोग होते ही यह मेरा प्राण तो अभी ही चला जायगा। इसलिये हे कान्ते! तू खेद न कर, जो होनहार होगा वह होगा, परन्तु अपना संयोग यावज्जीव निश्चल रहो।'

इस प्रकार सुन्दर और सुन्दरी की सविस्तार उक्ति प्रत्युक्ति को दीवार के आंतर रह कर स्वयं राजा ने ही सुन लिया। पीछे मन में अतिशय क्रोध लाकर राजा इस प्रकार विचार करने लगा—गहन स्त्री-चरित्र को चतुर पुरुष भी नहीं जान सकते। कहा है कि—

प्राप्तुं पारमपारस्य पारावारस्य पार्यते।
स्त्रीणां प्रकृतिवक्राणां दुश्चरित्रस्य नो पुनः॥

'अपार समुद्र का पार हो सकता है, परन्तु स्वभाव से ही वक्र ऐसी स्त्रियों के चरित्र का पार नहीं हो सकता।' कुलीन और शीलवती दूसरी राणियों की अवज्ञा करके जिसको मैंने पटरानी की, अहा! इसका यह चरित्र? परन्तु इस पर आसक्त हो कर जो पुरुष यहां सखी के मिष (बहाना) से हमेशा आता है, उस पुरुष को ही प्रथम सभा में प्रकट करके शिक्षा देनी।' ऐसा विचार करके क्रोध से हृदय में जलते हुए भी बाहर से शान्त वदन से राजा सभा में आकर बैठा। अब कपट से स्त्री-

अब राजा ने सुन्दरी पर रोप लाकर उसके भी नाक और कान काट कर के अन्तःपुर के बाहर निकाल दी, तब वह बड़ी दुःखी होती हुई पिता के घर गई। घर आई हुई सुन्दरी की ऐसी स्थिति देख कर उसके मात पिता बहुत दुःखी हुए और अत्यन्त विलाप करने लगे। प्रधान, सेठ और राजा की प्रथम प्रार्थनीय होकर, हे वत्से! इस समय तू इतनी बड़ी दुःखी कैसे हुई? प्रथम तू रसयुक्त इक्षुलता (गन्ना) की तरह राजा को इष्ट थी और अभी विषलता की तरह अकस्मात् अनिष्ट क्यों हो गई? पहले जिस पुत्री को वस्त्राभूषणों से सुशोभित देखी थी, उसको इस समय ऐसी दुःखी देखने पर भी जिन माता पिता का हृदय तुरन्त ही फट न गया! इससे यह हृदय अवश्य वज्र से ही घड़ा हुआ है ऐसा मालूम होता है। पुत्री दुःशील हो, सपत्नी वाली हो, भर्त्तार को इष्ट न हो या सन्तान रहित हो तो वह माता पिता को दुःख देने वाली ही होती है। परगृह के भूषण रूप, कलंक के स्थान रूप और पिता के धन को हरण करने वाली ऐसी पुत्री जिस को नहीं है, वे ही इस जगत् में सुखी हैं। इन्द्रियों की चपलता से इस सुन्दरी ने कदाचित् कुछ अकृत्य किया, तो भी हे प्रजापालक! आपको इस पर ऐसा करना उचित नहीं था। कहा है कि—

आपकी पुत्री और राजा की पटरानी होकर के मैंने ऐसी लघुता पाई. जिससे मेरा मन वहुत दुःखी होता है। मेरा यह प्राण अब पांच दिनों का पाहुना है. इसमें मेरा कुछ भी प्रतिवन्ध नहीं हैः परन्तु यह कलंक युक्त मरण ही मुझे अधिक दुःखी करता है। जब इन्द्रिय रूप तस्करों ने मेरा निर्मल शीलरूप धन लूट लिया. तब से ही वस्तुतः मै मर गई हूं। अब जो माँगने से मिलता हो तो भवोभव वत्सल ऐसे आप मेरे माता पिता हो और इस प्रकार का दुःख प्राप्त न हो. ऐसी मैं इच्छा करती हूँ।

इस प्रकार कहने वाद स्वयमेव श्वास को रोक करके सुन्दरी मरण पाकर नरक में नारकी हुई और अनेक प्रकार के दुःसह वेदना पाई। इस प्रकार सुन्दर और सुन्दरी को अत्यन्त विषयाशक्ति से इसलोक और पर-लोक में भयंकर दुःख वेदना प्राप्त हुई। इसलिये विषयों के ऐसे भयङ्कर दुःख विपाक को समझ कर हे सौम्यो ! विष की तरह विषय की आशा दूर से ही छोड़ दो। ये विषय मुख्य तो प्रमदा (स्त्री) के कारण ही रहते हैं और स्त्रियें प्रायः अति चंचल होती हैं। इसलिये इन विषयों को भी जयंतसेन राजा की तरह तुझ पुरुषों को छोड़ देना चाहिये। उसका दृष्टान्त इस प्रकार है—

समस्त सम्पत्ति का गृहरूप विशाला नाम की महा-पुरी में प्रबल सामन्तों से सेवनीय. अपने पराक्रम से

'जिस राजा के वैद्य, गुरु और मंत्री ये मीठे बोलने वाले हों, उस राजा का शरीर, धर्म और भण्डार ये तुरन्त ही क्षीण हो जाते हैं।' ऐसा हृदय में विचार कर के राजा हितान्वेषी मंत्री उसका अभिमान तोड़ने के लिये या उसके मन में संवेग-रङ्ग लाने के लिये इस प्रकार बोला—'हे धर्मशास्त्र और कला शास्त्र में कुशल! हे धन्य! हे लक्ष्मी के भण्डार! हे महीपति! अत्यन्त दुर्बोध स्त्री चरित्र के सिवाय दूसरा सब आप जानते हैं। जो पुरुष पली से समुद्र के पानी का प्रमाण करने में समर्थ है, वे भी गहन स्त्री चरित्र को अच्छी तरह नहीं जान सकता।' कहा है कि—

उपलनिकषं सुवर्णं पुरुषा व्यवहारनिकषणा ज्ञेयाः।
धूर्निकषा गोवृषभाः स्त्रीणां तु न विद्यते निकषः॥

'सुवर्ण की कसौटी पत्थर है, पुरुषों की कसौटी व्यवहार है और गौ-बैलों की कसौटी धुर है परन्तु स्त्रियों की किसी भी प्रकार की कसौटी ही नहीं है।' मंत्री के ऐसे वचनों से अपने वचन में आघात हुआ समझ कर, लज्जित होकर राजा विचार करने लगा—'दुर्बोध स्त्री-चरित्र को भी मैं देखूंगा और जन्मते ही एक कन्या को तलघर (पाताल घर) में रख कर, वह लक्षणों से दुःशील होगी तो भी उसको सुशील बनाऊंगा।' ऐसा विचार

'जिस राजा के वैद्य, गुरु और मंत्री ये मीठे बोलने वाले हों, उस राजा का शरीर, धर्म और भण्डार ये तुरन्त ही क्षीण हो जाते है।' ऐसा हृदय में विचार कर के राजा हितान्वेषी मंत्री उसका अभिमान तोड़ने के लिये या उसके मन में संवेग-रङ्ग लाने के लिये इस प्रकार बोला—'हे धर्मशास्त्र और कला शास्त्र में कुशल! हे धन्य! हे लक्ष्मी के भण्डार! हे महीपति! अत्यन्त दुर्बोध स्त्री चरित्र के सिवाय दूसरा सब आप जानते हैं। जो पुरुष पली से समुद्र के पानी का प्रमाण करने में समर्थ हैं, वे भी गहन स्त्री चरित्र को अच्छी तरह नहीं जान सकता।' कहा है कि—

उपलनिकषं सुवर्णं पुरुषा व्यवहारनिकषणा ज्ञेयाः।
धूर्निकषा गोवृषभाः स्त्रीणां तु न विद्यते निकषः॥

'सुवर्ण की कसौटी पत्थर है, पुरुषों की कसौटी व्यवहार है और गौ-बैलों की कसौटी धुर है परन्तु स्त्रियों की किसी भी प्रकार की कसौटी ही नहीं है।' मंत्री के ऐसे वचनों से अपने वचन में आघात हुआ समझ कर, लज्जित होकर राजा विचार करने लगा—'दुर्बोध स्त्री-चरित्र को भी मै देखूँगा और जन्मते ही एक कन्या को तलघर (पाताल घर) में रख कर, वह लक्षणों से दुःशील होगी तो भी उसको सुशील बनाऊँगा।' ऐसा विचा

वाली कामपताका नाम की वेश्या को धनादि से सन्तुष्ट करके एकान्त में पूछने लगा—'हे भद्रे ! इस राजा को व्यसन तो कुछ भी देखने मे नहीं आता, तो भी सभा मे विलम्ब से आता है और वापिस तुरन्त उठ कर चला जाता है उसका क्या कारण है? मैं जानने की इच्छा करता हूं, इसलिये जो कारण हो उसको निशंकः पूर्वक कह।' यह सुनकर वेश्या कहने लगी—'हे सार्थवाह ! यह तो मै भी अच्छी तरह नही जानती, परन्तु अन्तःपुर में अभी ऐसी बात चलती है कि जन्म से भूमितल मे रखी हुई किसी सुन्दरी के साथ वह क्रीड़ा करने जाता है।' इतना सुनते ही सार्थवाह कामविह्वल हो गया और यौवन तथा द्रव्य के उन्माद से वह इस प्रकार मन में विचारने लगा कि—'अहो ! लावण्यादि गुणों से जो प्रमदा (रमणी या स्त्री) सभा मे बैठे हुए राजा के हृदय मे स्फुरायमान हो रही है, वह कैसी होगी? इसलिये जब तक इन नेत्रों से उस पाताल-सुन्दरी को न देखूं, वहाँ तक मेरा धन, यौवन और जीवन, ये सब निष्फल है।' इस प्रकार मन में कामदेव से तप्त हो गया, तो भी बाहर से चेष्टा को रोक कर धूर्त्तपन से अवज्ञा पूर्वक हँसते २ गणिका को कहने लगा—'जिसने बाल्यावस्था से ही दूसरे किसी मनुष्य को देखा नहीं और जो बेचारी भूमितल में ही पड़ी रही है, वह कामिनी कामभोग

वाली कामपताका नाम की वेश्या को धनादि से सन्तुष्ट करके एकान्त में पूछने लगा—'हे भद्रे ! इस राजा को व्यसन तो कुछ भी देखने मे नही आता, तो भी सभा मे विलम्ब से आता है और वापिस तुरन्त उठ कर चला जाता है उसका क्या कारण है? मैं जानने की इच्छा करता हूं, इसलिये जो कारण हो उसको निशंकः पूर्वक कह।' यह सुनकर वेश्या कहने लगी—'हे सार्थवाह ! यह तो मैं भी अच्छी तरह नहीं जानती, परन्तु अन्तःपुर में अभी ऐसी बात चलती है कि जन्म से भूमितल मे रखी हुई किसी सुन्दरी के साथ वह क्रीड़ा करने जाता है।' इतना सुनते ही सार्थवाह कामविह्वल हो गया और यौवन तथा द्रव्य के उन्माद से वह इस प्रकार मन में विचारने लगा कि— 'अहो ! लावण्यादि गुणों से जो प्रमदा (रमणी या स्त्री) सभा मे बैठे हुए राजा के हृदय मे स्फुरायमान हो रही है, वह कैसी होगी? इसलिये जब तक इन नेत्रों से उस पाताल-सुन्दरी को न देखूं, वहां तक मेरा धन, यौवन और जीवन, ये सब निष्फल है।' इस प्रकार मन में कामदेव से तप्त हो गया, तो भी बाहर से चेष्टा को रोक कर धूर्तपन से अवज्ञा पूर्वक हंसते २ गणिका को कहने लगा—'जिसने बाल्यावस्था से ही दूसरे किसी मनुष्य को देखा नहीं और जो बेचारी भूमितल में ही पड़ी रही है, वह कामिनी कामभोग

इस प्रकार बोली—'हे स्वामिन् ! आज नवीन रूप वाले और वस्त्रवाले क्यो ?' ऐसा सुन कर सार्थवाह कोमल वचनों से उसको कहने लगा—'हे भद्रे ! मैं तेरा पति राजा नहीं हूं, परन्तु बहुत ऋद्धि वाला अनंगदेव नाम का सार्थवाह हूं। तेरे गुणो से आकर्पित होकर, जैसे कमलिनी के पास भ्रमर आता है वैसे मैं तेरे पास आया हूँ। लोचन को अतृप्ति रूप स्वरूप वाली हे शुभे ! आज तेरे दर्शन से मेरे चक्षु बनाने वाले विधाता का परिश्रम सफल हुआ।' इत्यादि मधुर वचनों से उसको खुश करके इस प्रकार वश कर लिया कि जिससे उसी दिन से ही उसके ऊपर वह अनुराग वाली हो गई और उसके साथ क्रीड़ा करने लगी। राजा के आने के समय तक वहाँ सुख से रह कर, पीछे सुरंग का द्वार बंद करके जैसे आया था वैसे चला गया। इस प्रकार प्रतिदिन आने के समागम से उन्हो का प्रेम दिन प्रति बढ़ता गया और भोग सुखों मे एक क्षण के जैसे कितनाक समय चला गया।

जैसे साँप के मुख में चूहा फँस जाता है। वैसे कभी अज्ञानता के वश से भूमिगृह मे बैठे हुए राजा के मुख मे अकस्मात् न आ जाऊँ इसलिये राजा के अभाव को सूचित करने वाली और सुन्दरी के पाव में बंधी हुई घुघुरु, विरह को नहीं सहने वाली सुन्दरी के पास वह

इस प्रकार बोली—'हे स्वामिन् ! आज नवीन रूप वाले और वस्त्रवाले क्यों ?' ऐसा सुन कर सार्थवाह कोमल वचनों से उसको कहने लगा—'हे भद्रे ! मैं तेरा पति राजा नही हूं. परन्तु बहुत ऋद्धि वाला अनंगदेव नाम का सार्थवाह हूं। तेरे गुणो से आकर्पित होकर, जैसे कमलिनी के पास भ्रमर आता है वैसे मैं तेरे पास आया हूं। लोचन को अतृप्ति रूप स्वरूप वाली हे शुभे ! आज तेरे दर्शन से मेरे चक्षु बनाने वाले विधाता का परिश्रम सफल हुआ।' इत्यादि मधुर वचनों से उसको खुश करके इस प्रकार वश कर लिया कि जिससे उसी दिन से ही उसके ऊपर वह अनुराग वाली हो गई और उसके साथ क्रीड़ा करने लगी। राजा के आने के समय तक वहां सुख से रह कर, पीछे सुरंग का द्वार बंद करके जैसे आया था वैसे चला गया। इस प्रकार प्रतिदिन आने के समागम से उनो का प्रेम दिन प्रति बढ़ता गया और भोग सुखों मे एक क्षण के जैसे कितनाक समय चला गया।

जैसे नाग के मुख में चूहा फंस जाता है। वैसे कभी महानना के वश से भूमिगृह में बैठे हुए राजा के हाथ में अकस्मात् न आ जाऊँ इसलिये राजा के स्वभाव को सूचित करने वाली और सुन्दरी के पाद में बंधी हुई घुघर, फिर भी नहीं जानने वाली सुन्दरी ने पान कर

तरफ वारांगनाओं के द्वारा चामर हो रहे हैं; जो भद्र जाति के हाथी पर बैठा हुआ, सब प्रकार के आभूषणों से शोभायमान, मंत्री-सामन्तों से सेवनीय, चतुरंगिणी (हाथी, घोड़ा, रथ और पैदल) सेना से घिरा हुआ, राजमार्ग में चलते समय भाट-चारण जिसकी जयध्वनि कर रहे हैं, जिसके आगे अनेक प्रकार के वाजित्रो से युक्त बत्तीस नाटक हो रहे हैं और मानो कौतुक से स्वर्गलोक में से पृथ्वी पर आये हुए इन्द्र ही है, ऐसे राजा को गवाक्ष में बैठी हुई उस सुन्दरी ने देखा और विचारने लगी कि—'यह स्वयं सर्वत्र उपवनादि में स्वेच्छापूर्वक घूम घूम कर निरन्तर अनेक प्रकार की क्रीड़ा करता है और मुझको बाल्यावस्था से ही कैदखाने के तुल्य भूमिगृह में डाल कर 'पृथ्वी इतनी ही है' इत्यादि वाक्यों से ठगता है। पर दुःख को नहीं जानने वाला यह दुरात्मा मुझको इस प्रकार दुःख सागर में डालने से अवश्य मेरे पूर्वभव का शत्रु ही है, ऐसा मैं मानती हूँ। भोग के साधनों से वह मुझे खुश करता है, परन्तु यह दुर्जन मुख का मीठा और मन का कपटी है।' इस प्रकार राजा के ऊपर से उसका मन विरक्त हो गया। फिर वह विचार करती है कि—'यह सार्थवाह मेरे पूर्वभव का अवश्य सम्बन्धी है, कि जिसने चित्र से यह आश्चर्यमयी पृथ्वी मुझे बतलायी।

'हे देवि ! विना निमित्त राजा को मैं किस प्रकार निमंत्रण करूं ? कारण कि विना कौतुक हँसना नहीं आता।' सुन्दरी ने कहा कि—'एक मास तक कपट से आप बीमार रहें और पीछे निरोग होने बाद रोगमुक्त स्नान के कारण उसको निमंत्रण करो।' प्रेमपाश से बंधे हुए और उसकी आज्ञा के अनुसार चलने वाले सार्थवाह ने उसका वचन स्वीकार किया और उसी प्रकार बीमार पड़ा। उस समय विघ्नभूत राजसेवा से रहित पातालसुन्दरी के भोग को आनन्द देने वाला मानने लगा।

अब किसी समय वह वैद्य को बुलावे और किसी समय औषधि भी मँगवावे. जिससे नागरिक लोग उसके घर सुख शान्ति पूछने के लिये आने लगे। कितनेक दिन बाद "सार्थवाह को अब कुछ ठीक है" ऐसी सर्वत्र लोकों में बात चलाई और एक मास पूरा हुआ तब अच्छे दिन अनेक प्रकार के मंगलाचार पूर्वक उसने रोगमुक्त स्नान किया। पीछे अच्छे वस्त्रों को पहिन कर और देवगुरु का स्मरण करके राजमन्दिर में गया. वहाँ उसने राजा को विनति की—'हे राजन् ! आपकी कृपा से मैं निरोगी हो गया हूँ. इसलिये एक दिन भोजन के लिये मेरे घर पधारें. मेरे पर प्रसन्न होकर इतनी कृपा करें।' ऐसा सुन कर समस्त राजवर्ग को माननीय सार्थवाह की दाक्षिण्यता

आज तो राजा को तू ही परोस।' जिससे कुलबालिका की तरह लज्जा पूर्वक परोसने के लिये राजा के आगे वारम्वार गमनागमन करने लगी। उसको देख कर आश्चर्य पूर्वक राजा मन में विचारने लगा कि—'यह पाताल सुन्दरी मेरी पत्नी यहां किस प्रकार आयी होगी? ऐसे तलघर में से वह यहाँ किस तरह आ सके?

मालूम होता है कि उसके जैसी इस सार्थवाह की स्त्री होगी। तो भी तलघर में शीघ्र ही जाकर मैं तलाश करूँ, कारण कि विना तलाश किये मुझे शान्ति नहीं होगी।' ऐसा विचार करके वहाँ से शीघ्र ही जाने को था, परन्तु लोक लज्जा से विना मन भोजन किया। राजा को उत्सुक मनवाला देख कर सार्थवाह ने पूछा कि—'हे नाथ! इतनी शीघ्रता क्यों? क्षणवार यहाँ कुछ विश्रान्ति तो लीजिये।' उसके समाधान के लिये राजा ने कहा—'इस समय राज्यकार्यों की व्यग्रता होने से ठह-रना न हो सकेगा।' ऐसा कह कर राजा शीघ्र ही तलघर में गया। उसके पहले ही पातालसुन्दरी वहाँ आकरके और गुप्तद्वार तुरन्त बंद करके कपट निद्रा से सो रही। जब राजा अपना मोहर लगा हुआ द्वार खोल कर तलघर में आया, तब सुन्दरी को सोती हुई देख कर आहिस्ते से उसको जगाई। वह भी सहसा उठी और तुरन्त उदासी

आज तो राजा को तू ही परोस।' जिससे कुलबालिका की तरह लज्जा पूर्वक परोसने के लिये राजा के आगे वारम्वार गमनागमन करने लगी। उसको देख कर आश्चर्य पूर्वक राजा मन में विचारने लगा कि—'यह पाताल सुन्दरी मेरी पत्नी यहां किस प्रकार आयी होगी? ऐसे तलघर में से वह यहाँ किस तरह आ सके?

मालूम होता है कि उसके जैसी इस सार्थवाह की स्त्री होगी। तो भी तलघर में शीघ्र ही जाकर मैं तलाश करूँ, कारण कि विना तलाश किये मुझे शान्ति नहीं होगी।' ऐसा विचार करके वहाँ से शीघ्र ही जाने को था, परन्तु लोक लज्जा से विना मन भोजन किया। राजा को उत्सुक मनवाला देख कर सार्थवाह ने पूछा कि—'हे नाथ! इतनी शीघ्रता क्यों? क्षणवार यहाँ कुछ विश्रान्ति तो लीजिये।' उसके समाधान के लिये राजा ने कहा—'इस समय राज्यकार्यों की व्यग्रता होने से ठहरना न हो सकेगा।' ऐसा कह कर राजा शीघ्र ही तलघर में गया। उसके पहले ही पातालसुन्दरी वहाँ आकरके और गुप्तद्वार तुरन्त बंद करके कपट निद्रा से सो रही। जब राजा अपना मोहर लगा हुआ द्वार खोल कर तलघर में आया, तब सुन्दरी को सोती हुई देख कर आहिस्ते से उसको जगाई। वह भी सहसा उठी और तुरन्त उदासी

आज तो राजा को तू ही परोस।' जिससे कुलबालिका की तरह लज्जा पूर्वक परोसने के लिये राजा के आगे वारम्वार गमनागमन करने लगी। उसको देख कर आश्चर्य पूर्वक राजा मन में विचारने लगा कि—'यह पाताल सुन्दरी मेरी पत्नी यहां किस प्रकार आयी होगी? ऐसे तलघर में से वह यहां किस तरह आ सके?

मालूम होता है कि उसके जैसी इस सार्थवाह की स्त्री होगी। तो भी तलघर में शीघ्र ही जाकर मैं तलाश करूं, कारण कि विना तलाश किये मुझे शान्ति नहीं होगी।' ऐसा विचार करके वहां से शीघ्र ही जाने को था, परन्तु लोक लज्जा से विना मन भोजन किया। राजा को उत्सुक मनवाला देख कर सार्थवाह ने कहा कि—'हे नाथ! इतनी शीघ्रता क्यों? क्षणवार यहां कुछ विश्रान्ति तो लीजिये।' उसके समाधान के लिये राजा ने कहा—'इस समय राज्यकार्यों की व्यग्रता होने से ठह-रना न हो सकेगा।' ऐसा कह कर राजा शीघ्र ही तलघर में गया। उससे पहले ही पातालसुन्दरी वहाँ आकर के और गुप्तद्वार तुरन्त बंद करके स्वस्थ चित्त से सो गयी। अब राजा अपना मोहर लगा हुआ द्वार खोल कर तलघर में आया, तब सुन्दरी को सोती हुई देख कर आलिङ्गन से उसको जगाई। तब भी अपना [illegible] और [illegible] [illegible]

सामग्री तैयार की और हाथ में बड़ी भेंट ले कर राजा के पास जा करके नमस्कार पूर्वक विनति की। 'हे राजन्! आपकी कृपादृष्टि से यहाँ रह कर मैंने बहुत द्रव्य प्राप्त किया और सर्वत्र अच्छा यशः भी हुआ। अब इस समय मुझे बुलाने के लिये मेरे पिता का पत्र आया है, जिससे हे प्रभो! माता पिता को मिलने की इच्छा वाले मुझे स्वदेश जाने की आप आज्ञा दें।' ऐसा सुन कर राजा ने कहा कि—'हे सार्थवाह! तू बड़ा दातार, विनयवान्, न्यायवान् दूसरे के मन को जानने वाला, परमप्रीतिपात्र और मेरा मित्र है; अब तू माता पिता को मिलने के लिये उत्कण्ठित होकर स्वदेश जाता है तो तेरी इच्छानुकूल कुछ भी माँग ले, वह देने के लिये मैं किसी प्रकार संकोच नहीं करूंगा।' सार्थवाह बोला—'हे प्रभो! आपकी कृपा से मुझे कुछ भी कमी नहीं है, तो भी हे सेवकवत्सल! यदि आप मेरे पर सन्तुष्ट हुए है तो समुद्रतट तक आप स्वयं मुझे पहुँचाने के लिये आवें, जिससे देश विदेश में मेरी प्रसिद्धि हो।' 'बहुत अच्छा' ऐसा कह कर उसकी माँग स्वीकार करके राजा ने सार्थवाह को कहा—'हे मित्र! आप के चलने का समय मुझे सूचित करना।' इस प्रकार राजा के कथन से सार्थवाह का मन सन्तुष्ट हुआ और वह तलघर में जाकर सब पातालसुन्दरी को मालूम किया।

वैठा और उसने अव 'आप सव खुशी से घर पधारें' ऐसा राजा आदि को कहा। पीछे शीघ्र ही उस रास्ते से दूसरे रास्ते जहाज़ों को वहुत वेग से चलाने लगे। राजा ने भी तुरन्त ही वापिस आकर तलघर को देखा, तो पाताल सुन्दरी के चली जाने से उसको शून्य देखने में आया। 'हा! उस धूर्त्त ने मुझे ठगा।' इस प्रकार शोकाग्र चित्त से अपनी पत्नी का सारा वृत्तान्त मन्त्री आदि को आद्यंत कहा—'इस तलघर में से वह वनिया उसको किस प्रकार हरण कर ले गया?' ऐसे आश्चर्य पाकर वे सव राजा के साथ तलघर में गये। वहाँ सूक्ष्म दृष्टि से तलाश करने से वन्द मुखवाली एक सुरंग उन्होंने देखी और उसी रास्ते से वे सार्थवाह के घर में गये। वहाँ उस घर को भी शून्य देखकर, कोप से लाल नेत्र करके राजा ने अपने योद्धाओं को आज्ञा की—'उस दुरात्मा को वाँधकर यहाँ ले आओ।' पीछे 'अहो! इस परदेशी वनिये की कैसी अद्भुत कला थी। हम लोग भी जिसको जानते नहीं थे ऐसी राजा की राणी का वह हरण कर गया।' इस प्रकार हृदय में आश्चर्य पाते हुए मन्त्री, सामन्त और सुभटों के साथ राजा स्वयं अत्यन्त क्रोधित होकर सार्थवाह के पीछे दौड़ा। तुरन्त ही समुद्र किनारे आये, परन्तु उस स्थान को शून्य देखा, जिससे पत्नी के प्रेम में वंधे हुए राजा ने नाविकों को इस

बैठा और उसने अब 'आप सब खुशी से घर पधारें' ऐसा राजा आदि को कहा। पीछे शीघ्र ही उस रास्ते से दूसरे रास्ते जहाज़ों को बहुत वेग से चलाने लगे। राजा ने भी तुरन्त ही वापिस आकर तलघर को देखा, तो पाताल सुन्दरी के चली जाने से उसको शून्य देखने में आया। 'हा! उस धूर्त ने मुझे ठगा।' इस प्रकार शोकाग्र चित्त से अपनी पत्नी का सारा वृत्तान्त मन्त्री आदि को आद्यंत कहा—'इस तलघर में से वह बनिया उसको किस प्रकार हरण कर ले गया?' ऐसे आश्चर्य पाकर वे सब राजा के साथ तलघर में गये। वहाँ सूक्ष्म दृष्टि से तलाश करने से बन्द मुखवाली एक सुरंग उन्होंने देखी और उसी रास्ते से वे सार्थवाह के घर में गये। वहाँ उस घर को भी शून्य देखकर, कोप से लाल नेत्र करके राजा ने अपने योद्धाओं को आज्ञा की—'उस दुरात्मा को बाँधकर यहाँ ले आओ।' पीछे 'अहो! इस परदेशी बनिये की कैसी अद्भुत कला थी! हम लोग भी जिसको जानते नहीं थे ऐसी राजा की राणी का वह हरण कर गया।' इस प्रकार हृदय में आश्चर्य पाते हुए मन्त्री, सामन्त और सुभटों के साथ राजा स्वयं अत्यन्त क्रोधित होकर सार्थवाह के पीछे दौड़ा। तुरन्त ही समुद्र किनारे आये, परन्तु उस स्थान को शून्य देखा, जिससे पत्नी के प्रेम में बंधे हुए राजा ने नाविकों को इस

करता है। फिर स्त्री तो द्रव्य से खरीद सके ऐसी वस्तु है, तो उसके लिये विलाप करने से सज्जनों में हमेशा के लिये आप हास्यपात्र होंगे।

भगवन्त ने यहाँ तक बात कही इतने में शुद्ध आशय वाले कुमारों ने हास्य, विस्मय और उल्लास पूर्वक तात को नमस्कार करके विनति की—'हे तात! सुन्दरी के प्रत्यक्ष दोषों को देखने पर भी कुशल राजा ने उन को गुण समझ लिये उसका क्या कारण?' ऐसा प्रश्न सुन कर समस्त प्राणियों के पर उपकार करने में उत्सुक मन वाले और संशय रूप अन्धकार को नाश करने वाले प्रभु कहने लगे—'विवेक रूप दृष्टि को आच्छादित करने वाला और लोक में दुर्यश को फैलाने वाला ऐसा सघन राग ही वहाँ कारण भूत समझना। कहा है कि—

रत्ता पिच्छंति गुणा दोसे पिच्छंति जे विरज्जंति।
मज्झत्था वि य पुरिसा गुणे य दोसे य पिच्छंति॥

जो पुरुष जिस वस्तु में रक्त (रागी) होता है वह उसी में सब गुण ही देखता है और जिनमें जो विरक्त होता है, वहाँ सब दोष ही देखता है। मध्यस्थ पुरुष तो गुण और दोष दोनों को देख सकते हैं।' कितनेक लोग तो स्त्री को वहाँ तक भी मानते हैं—

को आठ बैल, दो गौ, दो नौकर, दो दासी, दो खेती करने वाले और सब सामग्रीवाला घर देकर उसने अलग रखी थी और स्वयं कुरंगी पर मोहित होकर उसके साथ मनोवांछित भोग भोगता था। मदिरा पीने वाले की तरह मदिरा से गये हुए समय की भी उस को खबर नहीं पड़ती थी। इस नवयौवना को प्राप्त कर इन्द्राणी से आलिंगित इन्द्र को भी वह अपने से अधिक नहीं मानता था।

एक दिन राजा ने बहुधान्य को बुलवा कर कहा— समस्त सामग्री तैयार करके लश्कर की छावनी में तुरन्त ही आ जाओ। तब वह भी नमस्कार करके 'मैं आता हूँ' ऐसा कह कर घर आया। वहां कुरंगी को दृढ़ आलिंगन करके स्नेह पूर्वक कहने लगा—'हे कान्ते! आज तुझे घर पर अकेली छोड़ कर मुझे छावनी में जाना पड़ेगा, यदि मैं न जाऊं तो प्रचण्ड शासन वाला राजा मेरे पर कोपायमान हो जाय।' ऐसा सुनकर वह तन्वी (कुरंगी) मन में दुःखित होकर कहने लगी—'हे जीवनेश्वर! मैं भी आपके साथ चलूंगी, कारण कि ज्वाला-युक्त अग्नि तो सुख पूर्वक सहन हो सकती है, किन्तु हे नाथ निरंतर शरीर को दुःखी करने वाला आपका वियोग सहन न हो सकेगा।' इस प्रकार सुनकर बहुधान्य ने कहा कि—'हे मृगाक्षी! ये सब सत्य है, परन्तु तू यहां ही रहे, मेरे

को आठ बैल, दो गौ, दो नौकर, दो दासी, दो खेती करने वाले और सब सामग्रीवाला घर देकर उसने अलग रखी थी और स्वयं कुरंगी पर मोहित होकर उसके साथ मनोवांछित भोग भोगता था। मदिरा पीने वाले की तरह मदिरा से गये हुए समय की भी उस को खबर नहीं पड़ती थी। इस नवयौवना को प्राप्त कर इन्द्राणी से आलिंगित इन्द्र को भी वह अपने से अधिक नहीं मानता था।

एक दिन राजा ने बहुधान्य को बुलवा कर कहा— समस्त सामग्री तैयार करके लश्कर की छावनी में तुरन्त ही आ जाओ। तब वह भी नमस्कार करके 'मैं आता हूँ' ऐसा कह कर घर आया। वहां कुरंगी को दृढ़ आलिंगन करके स्नेह पूर्वक कहने लगा—'हे कान्ते! आज तुझे घर पर अकेली छोड़ कर मुझे छावनी में जाना पड़ेगा, यदि मैं न जाऊं तो प्रचण्ड शासन वाला राजा मेरे पर कोपायमान हो जाय।' ऐसा सुनकर वह तन्वी (कुरंगी) मन में दुःखित होकर कहने लगी—'हे जीवनेश्वर! मैं भी आपके साथ चलूंगी, कारण कि ज्वालायुक्त अग्नि तो सुख पूर्वक सहन हो सकती है, किन्तु हे नाथ निरंतर शरीर को दुःखी करने वाला आपका वियोग सहन न हो सकेगा।' इस प्रकार सुनकर बहुधान्य ने कहा कि— 'हे मृगाक्षी! ये सब सत्य हैं, परन्तु तू यहां ही रहे, मेरे

होकर उसने तुझे समाचार कहने के लिये मुझे आगे भेजा है। ऐसा सुनकर कपटी कुरंगी ने उसको कहा कि हे भद्र! यह समाचार उसकी बड़ी स्त्री को कहे. कि जिससे वह आज उसके घर भोजन करे। कारण कि मर्यादा का उल्लंघन करना योग्य नहीं। पीछे कुरंगी भी उसके साथ जाकर सुन्दरी को कहने लगी—हे बहिन! तू आज अच्छे २ भोजन तैयार कर. कारण कि स्वामी आज तेरे घर जीमेगा। ऐसा सुनकर सुन्दरी ने कहा—बहिन! मैं तो अनेक प्रकार की रसवती तैयार करूंगी. परन्तु स्वामी मेरे घर नहीं जीमेगा। यह सुनकर कुरंगी कुछ हँस कर कहने लगी—यदि तुझे वह प्रिय मानता होगा तो मैं कहती हूँ कि वह अवश्य यहाँ ही भोजन करेगा। ऐसा कुरंगी के वचनों से सरल आशयवाली सुन्दरी ने बहुत से सुन्दर भोजन तैयार किया।

अब बहुधान्य सस्मित होकर कुरंगी के घर आया और यह घर धनधान्यादि से खाली पड़ा था तो भी उसने तो सम्पूर्ण ही मान लिया। वह उसके घर के द्वार आगे क्षणवार खड़ा रहा. पीछे चौकी पर बैठ कर बोला—हे प्रिये! भोजन दे! शीघ्र ही कर। यह सुनकर वह भृकुटी चढ़ाकर बोली—हे दुष्टमते! जिसको तूने प्यारी बनाया है. उस तेरी मा के घर जा. वहाँ जाकर भोजन कर

विनयोचित करने वाली उस जीवनेश्वरी को मैं किस प्रकार मनाऊँ ?' इस प्रकार विचारता हुआ वह बकरे की तरह ऊँचा मस्तक करके बैठ रहा, तब सुन्दरी उसको कहने लगी—'हे स्वामिन् ! जीमते क्यों नहीं ?' वह कहने लगा—'अरे ! क्या जीमूं ? जीमने के उचित कुछ भी नहीं है; इसलिये मेरी प्रिया कुरङ्गी के घर से कुछ खाने का ले आव ।' ऐसा भर्त्तार का वचन सुनकर सरल आशयवाली सुन्दरी तुरन्त कुरङ्गी के घर जाकर उसको कहने लगी—'हे शुभे ! तेरे पति के भोजन के लिये कुछ खाने का दे ।' तब कुरङ्गी ने कहा—'बहन ! आज कुछ भी मैंने नहीं पकाया ।' परन्तु मैं उसको गोबर देऊँगी तो भी उसको वह प्रिय लगेगा, कारण कि वह मेरे पर अति आसक्त मनवाला है, जिससे मेरा सब दूषण सहन कर लेगा ।' इस प्रकार विचार करके ताजा, कुछ गरम, जिसमें गेहूं के कितनेक दाने फूले हुए हैं ऐसा, घृणा करने योग्य और बहुत नरम ऐसा गोबर वह ले आई और एक पात्र में डाल कर तुरंत सुन्दरी को देकर बोली—'यह ले भर्त्तार का जीमन ।' सुन्दरी वह लेकर शीघ्र ही अपने पति को दिया । तब वह मूर्ख शिरोमणि 'यह कुरङ्गी का भेजा हुआ है इसलिये अच्छा अमृत जैसा होगा' ऐसा समझ कर वह सब खा गया । उस कुपुरुष ने रागी होकर गोबर खाया

असत्य वचनों को सत्य मानने वाले उस कुबुद्धि रागांध ने परिणाम में हितकर ब्राह्मण को तुरंत ही नौकरी से दूर कर दिया। पीछे कुटिल और कुलटा के आचार वाली कुरंगी इस दुर्मति वहुधान्य को परम प्रीतिपात्र हो गई। 'राग की ऐसी चेष्टा को धिक्कार है!'

'हे वत्सो! इस प्रकार राग का माहात्म्य तुम्हारे आगे मैंने कहा। अब प्रस्तुतः (चालू) वात को कहता हूँ।

पातालसुन्दरी के जाने वाद राजा विचार करता है कि—'अरे! मैं अब क्या करूं? कहाँ जाऊँ? और उस प्रिया को किस प्रकार प्राप्त करूं?' इस प्रकार चिन्ता कर रहा था, इतने में देव-दुंदुभि की मधुर आवाज़ उसके सुनने में आई। 'यह मधुर शब्द कहाँ होता है?' इसका विचार करके और मन में आश्चर्य पाकर के राजा सामंत और मंत्री के साथ शब्द के अनुसार नगर के बाहर गये। वहाँ तत्काल केवलज्ञान उत्पन्न होने से देव गण जिनका महोच्छव कर रहे हैं और जो सुवर्ण कमल पर बैठे हुए हैं ऐसे मुनि को देखा। वहाँ मुनि को नमस्कार करके राजा ने पूछा—'हे स्वामिन्! हँसमुखी, रूप में रंभा जैसी और पतिवृता पातालसुन्दरी मुझे कब मिलेगी?' इस प्रकार राग से व्याकुल हुए राजा के वचनों को सुन कर उसको प्रतिबोधने के लिये मुनि बोले—'हे राजन्!

सार्थवाह का सुकंठ नाम का एक काणा मित्र है, उसके साथ निरन्तर देवर सम्बन्धी मस्करी करती हुई वह किसी २ समय कामविकार के वचनों को बोलेगी और पीछे अवसर देखकर स्वच्छन्द प्रकृतिवाली वह आहिस्ते २ आगे बढ़कर एकान्त में उस सुकंठ के साथ कामक्रीड़ा भी करेगी। पीछे "यह सार्थवाह जब तक जीवित रहेगा, तब तक सुकंठ के साथ इच्छानुकूल भोगविलास कभी नहीं भोग सकेगी· इसलिये इनको किसी प्रकार मार डालूं।" इस प्रकार कृतघ्न स्वभाववाली और उपकारी सार्थवाह का भी अनिष्ट चाहने वाली अपने मन में विचार करेगी। पीछे एक दिन रात्रि के समय शरीर चिन्ता के लिये जहाज़ के प्रान्त भाग में गए हुए उस विश्वासु सार्थवाह को आहिस्ते से वह समुद्र में डाल देगी। उसके बाद जहाज़ जब दूर जायगा तब कपट से पुकार करेगी और श्याममुख करके नाविकों को इस प्रकार कहेगी कि— शरीर चिन्ता के लिये गये हुए मुझ भाग्य हीन के पति पैर सरक जाने से अभी ही अकस्मात् समुद्र में गिर गये। इसलिये जहाजों को रोक कर शीघ्र ही मेरे पति की तलाश करो। उसको जो मनुष्य समुद्र में से बचावेगा उसको मैं मनोवांछित देऊँगी।' इस प्रकार उसके वचनों को सुनकर नाविक लोग उत्साह पूर्वक उसको देखने

सार्थवाह का सुकंठ नाम का एक काणा मित्र है, उसके साथ निरन्तर देवर सम्बन्धी मरकरी करती हुई वह किसी २ समय कामविकार के वचनों को बोलेगी और पीछे अवसर देखकर स्वच्छन्द प्रकृतिवाली वह आहिस्ते २ आगे बढ़कर एकान्त में उस सुकंठ के साथ कामक्रीड़ा भी करेगी। पीछे "यह सार्थवाह जब तक जीवित रहेगा, तब तक सुकंठ के साथ इच्छानुकूल भोगविलास कभी नहीं भोग सकेगी, इसलिये इनको किसी प्रकार मार डालूं।" इस प्रकार कृतघ्न स्वभाववाली और उपकारी सार्थवाह का भी अनिष्ट चाहने वाली अपने मन में विचार करेगी। पीछे एक दिन रात्रि के समय शरीर चिन्ता के लिये जहाज़ के प्रान्त भाग में गए हुए उस विश्वासु सार्थवाह को आहिस्ते से वह समुद्र में डाल देगी। उसके बाद जहाज़ जब दूर जायगा तब कपट से पुकार करेगी और श्यामसुख करके नाविकों को इस प्रकार कहेगी कि— शरीर चिन्ता के लिये गये हुए मुझ भाग्य हीन के पति पैर सरक जाने से अभी ही अकस्मात् समुद्र में गिर गये। इसलिये जहाजों को रोक कर शीघ्र ही मेरे पति की तलाश करो। उसको जो मनुष्य समुद्र में से बचावेगा उसको मैं मनोवांछित देऊँगी। इस प्रकार उसके वचनों को सुनकर नाविक लोग उत्साह पूर्वक उसको देखने

समुद्र में फेंक दिया मालूम होता है। युवान, धनिक, रूप, सौभाग्य और औदार्य गुणों से, शोभायमान, तथा अत्यन्त अनुरक्त मन वाले राजा और सार्थवाह ने अच्छे अच्छे अलंकार आदि से बहुत वार सत्कार करने पर भी दुर्जन स्वभाववाली और कृतघ्न इस पापिनी ने जब उन्हों को भी छोड़ दिया, उन्हों की भी न हुई तो मेरे जैसे साधारण रूप वाले और निर्धन की तो यह कभी होने की ही नहीं। कान में डाली हुई सलाई के जैसे स्वीकार करते या त्याग करते दोनों समय यह पापिनी कुछ समय में ही मुझे भी महा अनर्थकारी होगी।' इस प्रकार दोष समझ लेने से सुकंठ भी- उससे हृदय से विरक्त हो वाह्यभाव से मिष्ट बोलता हुआ उसके साथ विलास करेगा।

यहाँ समुद्र में पड़े हुए सार्थवाह को पुण्योदय से एक पटिया मिलेगा, इससे तैरते २ कितनेक दिन पीछे सिंहलद्वीप में निकलेगा। वहाँ मिष्ट जल से और बहुत पके हुए फलों से स्वस्थ शरीर वाला हो कर वह इस प्रकार मन में विचार करेगा कि—'अहो! मैं एकान्त अनुरक्त, दाता, भोगी और लक्ष्मी का भण्डार होने पर भी उस दुष्टा ने मुझे कैसी दुरवस्था में पहुँचाया? वह प्रीति, वे मीठे वचन, वह उचित सत्कार ये सब इस पापिनी ने अहा! एक साथ नष्ट किया। जिसका स्वीकार करते

धर्मबुद्धि वाला वह भोगों से विरक्त होकर के चारण मुनि के पास वहीं दीक्षा स्वीकार करेगा। पीछे तीव्र तप करते हुए नाशिका के अग्रभाग पर दृष्टि रख करके शुभ आशय से वह वहीं कायोत्सर्ग मे स्थित रहेगा।

कितनेक दिन बाद पातालसुन्दरी के जहाज़ दैवयोग से उसी किनारे पर आ पहुँचेंगे। वहाँ जहाज़ में बैठने वाले लोग लकड़ी पानी लेने के लिये नीचे उतरेंगे. उसी समय स्वेच्छापूर्वक विलाससुख भोगने की इच्छावाली पातालसुन्दरी सुकण्ठ के साथ स्नेह पूर्वक खेलती हुई अनेक प्रकार के वृक्षों की श्रेष्ठ छाया वाले कुसुमाकर नामक उद्यान में आवेगी। वहाँ कौतुक पूर्वक वन की शोभा देखते २ कायोत्सर्ग से रहे हुए अनंगदेवर्षि सुकण्ठ के देखने में आवेगा। उस समय अपने स्वामी और मित्र को देख कर सरल आशयवाला सुकण्ठ मन में हर्षित होगा और मुनि के चरणों में मस्तक रख कर उसको वन्दना करेगा। मुनि भी अपने मित्र को देख कर हर्षित होंगे और तुरन्त कायोत्सर्ग पार कर उसको बोलावेंगे। उस समय पातालसुन्दरी वृक्ष के अन्तराल रहकर उसको देखेगी और विचार करेगी—'अहो ! इसको समुद्र में फेंक दिया था तो भी यह अभी तक जीवित है। अब यह वैरी सुकण्ठ इसके पास से मेरा दुश्चरित्र जान

कर स्वर्ग में जाँयगे और वहाँ से एक भव कर के मोक्ष में जाँयगे।

हे राजन्! द्रोह करने वाली और स्वच्छन्दचारिणी वह अपने आप चली गई तो भी तू उसको प्राप्त करने के लिये इच्छता है, ऐसी तेरी मूढ़ता को धिक्कार है। तूने इसका चरित्र सुना इसी प्रकार प्रायः सब स्त्रियों का चरित्र समझ लेना। कारण कि चावल का एक दाना देखने से सारी हाँडी की परीक्षा हो जाती है। इस प्रकार सब स्त्रियें दोष की उद्घोषणा रूप हैं, इसलिये हे राजन्! स्त्रियों के मोह को सर्वथा छोड़ कर शीघ्र ही आत्महित साधन के लिये तत्पर हो। इस प्रकार सर्वज्ञ के सुधा समान उपदेश से राजा के मोह रूप विष का आवेग तुरन्त ही शान्त होगया। जिससे उक्त प्रकार के स्त्रीचरित्र को जानकर और विषयों से विरक्त होकर राजा ने उन केवली भगवान् के पास तुरन्त ही दीक्षा ग्रहण की। पीछे बढ़ते हुए वैराग्य के रंग वाले और निसंग हृदय वाले उस मुनि को शुभध्यान से सातवें दिन केवल ज्ञान प्राप्त हुआ। सर्वज्ञ हुए राजर्षि ने बहुत वर्ष तक भव्य जीवों को प्रतिबोध देकर और सब कर्मों का क्षय करके सिद्धिपद पाया।

हे वत्सो! इस प्रकार स्त्रियों की चपलता को जान कर उनके आधीन रहे हुए कामभोगों से विरक्त हो। इस

कर स्वर्ग में जाँयगे और वहाँ से एक भव कर के मोक्ष में जाँयगे।

हे राजन्! द्रोह करने वाली और स्वच्छन्दचारिणी वह अपने आप चली गई तो भी तू उसको प्राप्त करने के लिये इच्छता है, ऐसी तेरी मूढ़ता को धिक्कार है। तूने इसका चरित्र सुना इसी प्रकार प्रायः सब स्त्रियों का चरित्र समझ लेना। कारण कि चावल का एक दाना देखने से सारी हाँडी की परीक्षा हो जाती है। इस प्रकार सब स्त्रियें दोष की उद्घोषणा रूप है, इसलिये हे राजन्! स्त्रियों के मोह को सर्वथा छोड़ कर शीघ्र ही आत्महित साधन के लिये तत्पर हो।' इस प्रकार सर्वज्ञ के सुधा समान उपदेश से राजा के मोह रूप विष का आवेग तुरन्त ही शान्त होगया। जिससे उक्त प्रकार के स्त्रीचरित्र को जानकर और विषयों से विरक्त होकर राजा ने उन केवली भगवान् के पास तुरन्त ही दीक्षा ग्रहण की। पीछे बढ़ते हुए वैराग्य के रंग वाले और निसंग हृदय वाले उस मुनि को शुभध्यान से सातवें दिन केवल ज्ञान प्राप्त हुआ। सर्वज्ञ हुए राजर्षि ने बहुत वर्ष तक भव्य जीवों को प्रतिबोध देकर और सब कर्मों का क्षय करके सिद्धिपद पाया।

हे वत्सो! इस प्रकार स्त्रियों की चपलता को समझ कर उनके आधीन रहे हुए कामभोगों से विरक्त हो। देव

जलाने लगा। उस समय घूमने से, महनत से, गरम वायु से, अग्नि के पास रहने से, भयंकर ग्रीष्मऋतु के प्रभाव से, और दुःसह घाम से वह अत्यन्त तृषा से व्याकुल हो गया। जिससे वह घड़े में लाया हुआ पानी सब पी गया, तो भी उसे लेशमात्र भी शान्ति न मिली और तृषा भी शांत न हुई। पीछे भ्रमित दृष्टि से चारों ओर पानी को देखता हुआ वह सो गया और आर्तध्यान के वश से स्वप्न में अपने नगर गया। वहाँ तृषा (प्यास) से आकुल होकर अपने नगर के समस्त घरों का सब पानी पी गया, तो भी उसी प्रकार प्यासा ही रहा, जिससे समस्त बावड़ी, कुआँ और सरोवर के जल को भी पी गया, तो भी जैसे तेल से अग्नि तृप्त नहीं होती, वैसे इतने जल से भी उसकी प्यास शान्त न हुई, तब वह सब नदियों का और समुद्रों का जल भी पी गया, तो भी प्यासे रहकर पानी की खोज के लिये घूमता २ मारवाड़ में बहुत गहरा जल वाला एक कुआँ देखा, वहाँ कुआँ मे से पानी निकालते समय आस पास उगे हुए घास में लगी हुई पानी की बूंदों को वह प्यास की शान्ति के लिये चाटने लगा।" हे वत्सो! इस दृष्टान्त का सारांश यह है कि— बावड़ी, कुआँ, सरोवर, नदी और समुद्र के समस्त पानी को पीने पर भी उसकी प्यास शान्त न हुई तो घास के अग्र भाग से झरते हुए बूंदों से कैसे शान्त

होगी ? वैसे समुद्र सदृश स्वर्ग के भोगों से जो अतृप्त रहे तो घास के अग्र भाग से झरते हुए पानी के समान मनुष्य के भोगों से तुम किस प्रकार तृप्त हो सकोगे ?' पुनः प्रभु ने कुमारों को संसार की असारता-गर्भित सिद्धान्त का सार रूप उपदेश दिया—"हे भव्यों ! प्रतिबोध पाओ ! किस कारण प्रतिबोध नहीं पाते ? कारण कि व्यतीत हुई रात्रि की तरह फिर २ मनुष्यभव पाना सुलभ नहीं है। देखो, कितनेक प्राणी बाल्यावस्था में ही मर जाते हैं, कितनेक वृद्ध होकर मरते हैं और कितनेक गर्भ में रहे हुए ही च्यव जाते है। जैसे सींचाना पक्षी तीतर को छल कर उसके प्राण का नाश करता है, वैसे ही काल मनुष्य के जीवन को नाश करता है। जो मनुष्य माता पिता आदि के मोह में मुग्ध हो जाते हैं, उनको परभव में सुगति सुलभ नहीं है। जिससे दुर्गति में जाने के भय को देख कर सदाचारी भव्य जीवों को सब प्रकार के आरम्भों से निवृत्त होना चाहिये। जो प्राणी आरम्भ से निवृत्त नहीं होते, वे अपने किये हुए कर्मों के उदय से नरकादि दुर्गति में भ्रमण करते हैं। कारण कि किये हुए कर्मों को बिना भोगे जीव मुक्त नहीं हो सकता। देव, गांधर्व, राक्षस, असुर, स्थलचर सर्पादिक एवं राजा, सामान्य मनुष्य, सेठ और ब्राह्मण, इन सबको दुःखित होकर अपने २ स्थान का त्याग करना पड़ता है। आयुष्य का क्षय होने पर

अपने २ कर्मों के साथ प्राणी असमय में ताड़ वृक्ष से टूट कर गिरते हुए फल की तरह मृत्यु पाकर काम भोगों से और स्वजन परिवार से जुदा पड़ता है। देवगति में अनुत्तर विमान तक के सुखों को भोगने पर भी तुमको तृप्ति न हुई, तो इस मनुष्य गति के तुच्छ सुखों से कैसे तृप्ति होगी? सर्प की जैसे भयंकर, समुद्र के चपल तरंगों की तरह क्षण-भंगुर और परिणाम में अनिष्ट, ऐसे विषयों को समझ कर इनमें आसक्त न हो। विषय रूप मांस में लुब्ध मन वाले प्राणी रागांध, पराधीन, स्थिति रहित, अपने हित से भ्रष्ट और हताश होकर नाश हो जाते है। वीणा और वंशी आदि वाद्यों के कान को सुखदायक शब्दों में आसक्त होकर मूढ़ मन वाले अनेक प्राणी मृग के जैसे मृत्यु पाते है। शृङ्गार के विचार से मनोहर और सुललित हाव भाव विलास से परिपूर्ण रूप में दृष्टि रखकर प्राणी पतंग की तरह नाश होते हैं। सरस आहार के अभिलाषी तथा मक्खन, मदिरा, मांस और मधु के भक्षण करने वाले प्राणी मांस के लोलुपी मच्छों की तरह मरते हैं। श्रेष्ठ फूलों के सुगन्ध में मोहित होने वाले प्राणी भ्रमर की तरह विनाश होते हैं, तो भी मूढ़ मन वाले जीव नहीं समझते। मृदु और मनोहर स्पर्श में आसक्त, हित तथा गुणों को नहीं जानने वाले, मत्त आलसी और स्पर्श के

राग से मोहित मन वाले मूढ़ प्राणी हाथी की तरह ससार के बंधन में बंध जाते हैं। इत्यादि अठानवे काव्यों से अठानवे पुत्रों को प्रतिबोध देकर प्रभु ने उनको वैराग्य वासित किये। पीछे भगवान की वाणी का विचार करते २ उन सबको जातिस्मरण ज्ञान हुआ। जिससे मानो कल ही भोगे हों वैसे पहले भोगे हुए देव गति के सुखों का उनको स्मरण हुआ। तब वे विचारने लगे—'सर्वार्थसिद्ध विमान में जो अतुल सुख संपत्ति है, वे एकान्त और अत्यन्त मोक्ष सुख की वानगी जैसी है वे कहाँ! और नवद्वार से बहती हुई दुर्गन्ध से बीभत्स शरीर वाले मनुष्यों का अत्यन्त तुच्छ सुखाभास कहाँ!' इस प्रकार ज्ञान हो जाने से और पहले बहुत काल तक अनुत्तर विमान के सुखों को भोगे हुए होने से, इस भव के तुच्छ विषयों में इन्हों का मन लेश मात्र भी आसक्त न रहा। कहा है कि—

अविदितपरमानन्दो विषयसुखं मंयते हि रमणीयम्
तस्यैव तैलमिष्टं येन न दृष्टं घृतं क्वापि॥

'जिसको परमानन्द की खबर नहीं है, वही प्राणी विषयसुखों को रमणीय मानता है, जिसने घी कहीं भी

देखा या खाया नहीं है उसको ही तेल प्रिय लगता है।' वे स्वर्ग में अहमिन्द्रपन से नित्य सुख भोगते हुए बहुत काल तक रहे थे, जिससे उन्हों के हृदय में भरत की आज्ञा के आधीन, ऐसा राज्यसुख किंचित् भी पसन्द न आया। कहा है कि—

क्रीडिता ये चिरं हंसा निर्मलाम्भसि मानसे।
तेषां रुचिर्न सेवाल-जटिले खातिकाम्भसि॥

'जिन हंसों ने निर्मल जल वाले मानसरोवर में बहुत काल तक क्रीड़ा की है, उनको सेवाल से व्याप्त खाई के पानी में कभी भी रुचि न होगी।' पीछे चढ़ते हुए शुभ भाव से वे अठानवे प्रभु के पुत्र हाथ जोड़कर, भगवान को नमस्कार करके इस प्रकार विनती करने लगे—'हे नाथ ! इस संसार में जन्म, जरा, मरण और रोगों से प्राणी वहां तक ही दुःखित होता है कि जहां तक आपकी वाणी रूप शुद्ध रसायन का वह सेवन नहीं करता। हे तात् ! चार गति के दुःखरूप आतप (घाम) आत्मा को वहाँ तक ही तपा सकता है कि जहाँ तक आपके चरणरूप वृक्ष की शीतल छाया को वह प्राप्त नहीं कर सकता। हे भगवन् ! जहां तक भव्यजीव जंगम कल्पवृक्ष जैसे आपको प्राप्त नहीं करते, वहां तक ही वे

राग से मोहित मन वाले मूढ़ प्राणी हाथी की तरह संसार के बंधन में बंध जाते हैं। इत्यादि अठानवे काव्यों से अठानवे पुत्रों को प्रतिबोध देकर प्रभु ने उनको वैराग्य-वासित किये। पीछे भगवान् की वाणी का विचार करते २ उन सबको जातिस्मरण ज्ञान हुआ। जिससे मानो कल ही भोगे हों वैसे पहले भोगे हुए देव गति के सुखों का उनको स्मरण हुआ। तब ये विचारने लगे— 'सर्वार्थसिद्ध विमान में जो अतुल सुख संपत्ति है, वे एकान्त और अत्यन्त मोक्ष सुख की बानगी जैसी है ये कहाँ! और नवद्वार से बहती हुई दुर्गन्ध से बीभत्स शरीर वाले मनुष्यों का अत्यन्त तुच्छ सुखाभास कहां!' इस प्रकार ज्ञान हो जाने से और पहले बहुत काल तक अनुत्तर विमान के सुखों को भोगे हुए होने से, इस भव के तुच्छ विषयों में उन्हों का मन लेश मात्र भी आसक्त न रहा। कहा है कि—

अविदितपरमानन्दो विषयसुखं मंयते हि रमणीयम्
तस्यैव तैलमिष्टं येन न दृष्टं घृतं क्वापि ॥

'जिसको परमानन्द की खबर नही है, वही प्राणी विषयसुखों को रमणीय मानता है, जिसने भी कहीं भी

पञ्चम उल्लास

अनन्त सिद्धि वाले, समान दृष्टि वाले, सुवर्ण वर्ण वाले, जिनके समस्त अज्ञानरूप अन्धकार नाश हो गया है और जो सव प्रकार के विषादों (क्लेशों) से रहित है, ऐसे नवीन आदिनाथ प्रभु आपको सम्पत्ति के निमित्त भूत हों।

अब अपने अठानवे बन्धु भगवान् के पास गये हैं, ऐसा चरपुरुषों के मुख से जान कर और खेदित होकर भरत महाराजा इस प्रकार विचारने लगा—"ऐश्वर्य से उन्मत्त होकर मैने अपने भाइयों को भी सामान्य मनुष्यों की तरह सेवा के लिये बुलवाया, जिससे वे सब खेदित होकर मेरे अनुचित व्यवहार की बात कहने के लिये अवश्य पिता के पास गये है। अहो! देव और असुरों की सभा में वैठे हुए तात भी उनके मुख से मेरा अनौचित्य सुन कर मन में कुछ खेद करेंगे और बड़े भाई ने राज्य के लोभ से छोटे भाइयों को उनके राज्य से बाहर निकाल दिया।' इस प्रकार पिता जी और दूसरे देवता भी मन में समझेंगे। आयुधशाला में चक्र का प्रवेश न होने के कारण मन्त्री

दुःखित होकर संसार में परिभ्रमण करते हैं। हे स्वामिन्! आप तारने वाले होने पर भी जो भव्य जीव संसारसमुद्र को नहीं तिर सकते, उसमें महामोह का ही प्रबल माहात्म्य कारण भूत है। भरतक्षेत्र का सम्पूर्ण ऐश्वर्य अच्छी तरह भरतेश्वर भोगें, हम तो अब आत्महित करने वाली दीक्षा को ही स्वीकार करेंगे।' इस प्रकार विषयों से विरक्त होकर, अत्यन्त वैराग्य युक्त होकर और तृण की तरह राज्य का त्याग करके उन्होंने तुरन्त ही प्रभु के पास दीक्षा ली और दीक्षा लेने बाद थोड़े समय में ही क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ होने से घातिकर्मों का क्षय होगया और वे सब सर्वज्ञ हुए अर्थात् केवल ज्ञानी हुए।

❀ इति चतुर्थ उल्लास ❀

कहने लगे कि—'हे बन्धुओ! राज्य में वापिस चल कर अनेक प्रकार के सुखों को भोगते हुए आपके बड़े भाई की लक्ष्मी को आप कृतार्थ करें।' इस प्रकार बड़े भाई भरत ने उन से कहा, किन्तु रागद्वेष रहित और निःसंग वे कुछ भी नहीं बोले। तब 'अवश्य! ये मेरे से नाराज हो गये हैं, जिससे मेरे साथ बोलते भी नहीं।' ऐसा मान कर दुःखाग्नि से जलते हुए भरत को प्रभु ने इस प्रकार वचनामृत से सिंचन किया—'हे राजन्! ये तेरे से नाराज़ हैं, ऐसी शंका लाकर तू खेद न कर, कारण कि ये महर्षि महात्मा रोष और तोष के वश नहीं हैं। कहा है कि—

शत्रौ मित्रे तृणे स्त्रैणे स्वर्णेऽश्मनि मणौ मृदि।
मोक्षे भवे च सर्वत्र समचित्ता महर्षयः॥

'शत्रु और मित्र, तृण और स्त्री, सुवर्ण और पत्थर, मणि और माटी, मोक्ष और संसार, इन सब वस्तुओं में महात्मा समान चित्त वाले होते हैं अर्थात् समभाव वाले होते हैं।' इसलिये पाप रहित और समता रूप सुधा रस में जिनके मन मग्न हो गये हैं ऐसे महात्माओं को राज्य सम्पत्ति की या मनोहर विषयों की किञ्चित् मात्र भी तृष्णा नहीं है। इतना ही नहीं! किन्तु जो आहार भी केवल संयम के निर्वाह के लिये ही ग्रहण करते हैं, तो वे संसार के

सामन्तों से प्रेरित होकर मैंने अवश्य ! यह खराब काम किया है। नीति शास्त्र में कहा है कि—

वालभावाल्लघिष्ठाश्चेन्न चलन्त्यग्रजाज्ञया।
तथापि स शुभान्वेषी परुषं तर्जयेन्न तान् ॥

'छोटे भाई वालभाव से कदाचित् वड़े भाई की आज्ञानुसार न चलें, तो भी शुभ को चाहने वाला वड़ा भाई उसकी कठोरता पूर्वक तर्जना न करे।'

अतितर्जना न कार्या शिष्यसुहृद्भृत्यसुतकलत्रेषु।
दध्यपि सुमथ्यमानं त्यजति स्नेहं न सन्देहः॥

'शिष्य, मित्र, नौकर, पुत्र और स्त्री इन सवकी अति तर्जना नहीं करनी चाहिये, क्योंकि वहुत मथन करने से दही भी स्नेह (मक्खन) को त्याग देता है। अर्थात् अधिक तर्जना करने से स्नेह का लोप होता है इसमें सन्देह नहीं।' इसलिये अव तात के पास जा कर और उन्हों को समझा कर यहाँ ले आऊँ और अपना अपना राज्य पर उन्हों को वापिस स्थापित कर दूँ।

ऐसा विचार करके भरतेश्वर ने अष्टापद पर्वत पर जाकर ऋषभदेव स्वामी (तात) को नमस्कार किया और भाइयों के पास अपने अपराध की क्षमा माँगी। पीछे

कहने लगे कि—'हे बन्धुओ! राज्य में वापिस चल कर अनेक प्रकार के सुखों को भोगते हुए आपके बड़े भाई की लक्ष्मी को आप कृतार्थ करें।' इस प्रकार बड़े भाई भरत ने उन से कहा, किन्तु रागद्वेष रहित और निःसंग वे कुछ भी नहीं बोले। तब 'अवश्य! ये मेरे से नाराज़ हो गये हैं, जिससे मेरे साथ बोलते भी नहीं।' ऐसा मान कर दुःखाग्नि से जलते हुए भरत को प्रभु ने इस प्रकार वचनामृत से सिंचन किया—'हे राजन्! ये तेरे से नाराज़ हैं, ऐसी शंका लाकर तू खेद न कर, कारण कि ये महर्षि महात्मा रोष और तोष के वश नहीं है। कहा है कि—

शत्रौ मित्रे तृणे स्त्रैणे स्वर्णेऽश्मनि मणौ मृदि।
मोक्षे भवे च सर्वत्र समचित्ता महर्षयः॥

'शत्रु और मित्र, तृण और स्त्री, सुवर्ण और पत्थर, मणि और माटी, मोक्ष और संसार, इन सब वस्तुओं में महात्मा समान चित्त वाले होते हैं अर्थात् समभाव वाले होते हैं।' इसलिये पाप रहित और समता रूप सुधा रस में जिनके मन मग्न हो गये है ऐसे महात्माओं को राज्य सम्पत्ति की या मनोहर विषयों की किंचित् मात्र भी तृष्णा नहीं है। इतना ही नहीं! किन्तु जो आहार भी केवल संयम के निर्वाह के लिये ही ग्रहण करते हैं, तो वे संसार के

अंकुर रूप स्त्रियों से कैसे मोहित हों?' इस प्रकार प्रभु के वचनामृतों से सब बन्धुओं को रागद्वेष से रहित, संसार सुख में निःस्पृह और व्रत के उपदेश से संयमी जान कर भरत महाराजा ने उन सब को नमस्कार पूर्वक वन्दना की।

पीछे भरत ने, छोटे भाइयों को देने के लिये घृत के पक्वान और चावल, दाल आदि अनेक प्रकार के भोजन रसोइयों के द्वारा मँगवाये। उसको भरत महाराजा अपने हाथ से देने लगे, परन्तु 'यह अनेषणीय (अकल्पनीय) है' ऐसा कह कर उन्होंने उसके सामने दृष्टि भी न की। तब 'ये महात्मा मेरे दिये हुए भोजन को भी क्यों नहीं लेते हैं?' इस प्रकार की चिन्ता में मग्न हुए भरत को फिर जगद्गुरु कहने लगे—'हे राजन्! यह तो राजपिण्ड है, जिससे यह तो कल्पता ही नहीं, और अन्य पिण्ड भी यदि अभ्याहृत (सामने लाया हुआ) पिण्ड हो, तो वह भी साधुओं को नहीं कल्पे।' ऐसे भगवान् के वचनों को सुन कर भरत नृप खेद पूर्वक विचार करने लगा—'अहो! मैं अयोग्य होने से इस समय पिता और भाइयों ने अवश्य मेरा सर्वथा त्याग किया मालूम होता है। जिससे यह मेरा अद्भुत राज्य तो वन्ध्यवृक्ष की तरह निष्फल है, क्योंकि जो राज्य आहार के दान से भी भाइयों के उपयोग में नहीं

आता । अवश्य ! साधुरूप सत्पात्र के दानरूप आलम्बन विना इतने परिग्रह और आरम्भ के भार से मैं पतित हो गया हूं ! कहा है कि—

नरकं येन भोक्तव्यं चिरं तत्पापपूर्त्तये ।
नियुक्ते तं विधी राज्ये बह्वारम्भपरिग्रहे ॥

'जिसने चिरकाल तक नरक भोगा हुआ है, उसको इतने पाप की पूर्त्ति के लिये बहुत आरम्भ और परिग्रह वाले राज्य में विधाता जोड़ देता है।' जिनके दिये हुए भोजन वस्त्रादि साधुओं के उपयोग में आते हैं, ऐसे सामान्य पुरुष मेरे से भी धन्य हैं।"

इस प्रकार अत्यन्त खेदित हो जाने से जिसका मुख निस्तेज हो गया है, ऐसे भरत महाराजा को देख कर, उसका खेद दूर करने के लिये इन्द्र ने प्रभु को पूछा कि—'हे स्वामिन् ! अवग्रह कितने हैं ? और उसके दान से क्या फल होता है ?' ऐसा प्रश्न सुन कर प्रभु बोले—'हे सौम्य ! अवग्रह पांच प्रकार के हैं 'मेरु पर्वत की दक्षिण दिशा में सौधर्मेन्द्र का अवग्रह और उत्तर दिशा में ईशानेन्द्र का अवग्रह, यह प्रथम देवेन्द्रावग्रह कहा जाता है। चक्रवर्ती को छह खंड पृथ्वी का स्वामित्व है, यह दूसरा अवग्रह, स्वदेश के राजा का तीसरा अवग्रह,

पीछे भरत महाराजा प्रभु की वाणी से श्रद्धायुक्त होकर सब श्रावकों को प्रति दिन बिना रोक टोक उत्तम २ भोजन जिमाने लगे। पीछे स्वादिष्ट आहार की लालसा से आहिस्ते २ बहुत लोग कपट से श्रावक बन कर पहले के श्रावकों के साथ मिलते गये, जिससे उनकी संख्या बढ़ गई। एक समय मन में घंटाल कर रसोइयाओं ने भरत महाराजा से विनती की—'हे देव! संख्या में वृद्धि हो जाने से इन श्रावकों को अब हम भोजन नहीं करा सकते!' यह सुन कर तात्कालिक बुद्धि वाले राजा ने दानशाला के रास्ते पर सूक्ष्म बीज बखेर कर सच्चे श्रावकों की परीक्षा की*। जो परीक्षा में पास नहीं हुए, उनको राजा ने श्रावकों से अलग किया और जो पास हुए उनके हृदय पर काकिणी रत्न से तीन २ रेखा का एक चिह्न कर दिया। पीछे प्रत्येक छह २ महीने के बाद राजा नवीन श्रावकों की परीक्षा करता था और इसमें जो पास होते थे उनको फिर वैसी ही निशानी कर देता था। इस प्रकार सच्चे श्रावक प्रतिदिन भरत चक्रवर्त्ती के वहां भोजन करते थे।

चक्रवर्त्ती की प्रेरणा से "जितो भवान् वर्द्धते भीस्तस्मान्माहन माहन" आप जीत गये है, भय बढ़ा करता है,

---

* जो सच्चे श्रावक थे वे उन बीज पर नहीं चले और दूसरे चले।

शय्यातर (मकान के स्वामी) का चौथा अवग्रह और साधर्मिक साधु जो पहले आकर रहे हों उनका पांचवां अवग्रह जानना। ये पांच अपने २ अवग्रह का दान दें तो वे इष्टार्थसिद्धि को पाते हैं।' इस समय सौधर्म देवलोक का अधिपति खुश होकर भगवान को कहने लगा— 'हे नाथ! सब श्रमण महात्माओं को मेरे समस्त अवग्रह की मैं आज्ञा देता हूँ।' ऐसा सुनकर भरतेश्वर को विचार हुआ कि—'मैं भी साधुओं को मेरे अवग्रह की आज्ञा दे दूं, कारण कि इतना करने से भी मैं कृतार्थ होऊंगा।' पीछे अपने अवग्रह की आज्ञा से होने वाले पुन्य के फल की आशा से, भरत महाराजा अंतःकरण में हर्षित होकर भगवान् को कहने लगा—'हे तात्! छह खंड भरतभूमि में सर्वत्र निःशंक होकर साधु महात्मा अपनी इच्छानुसार विचरें। इस प्रकार मैं मेरे अवग्रह की उनको आज्ञा देता हूँ। परन्तु हे तात्! इस भोजन का अब मैं क्या करूं?' भगवान् बोले—'हे राजन्! जो शुद्ध धर्म और क्रिया में तत्पर हों, स्वल्प आरम्भ और परिग्रह वाले हों, पांच अणुव्रत को पालने वाले हों और सर्वचारित्र-व्रत को चाहते हों ऐसे श्रमणोपासक (श्रावक) भी सत्पात्र कहे जाते हैं।' (यहाँ भगवन्त् ने वह अन्न श्रावकों को देने का सूचित किया है)।

पीछे भरत महाराजा प्रभु की वाणी से श्रद्धायुक्त होकर सब श्रावकों को प्रति दिन विना रोक टोक उत्तम २ भोजन जिमाने लगे। पीछे स्वादिष्ट आहार की लालसा से आहिस्ते २ बहुत लोग कपट से श्रावक बन कर पहले के श्रावकों के साथ मिलते गये, जिससे उनकी संख्या बढ़ गई। एक समय मन में कंटाल कर रसोइयाओं ने भरत महाराजा से विनती की—'हे देव! संख्या में वृद्धि हो जाने से इन श्रावकों को अब हम भोजन नहीं करा सकते!' यह सुन कर तात्कालिक बुद्धि वाले राजा ने दानशाला के रास्ते पर सूक्ष्म बीज बखेर कर सच्चे श्रावकों की परीक्षा की*। जो परीक्षा में पास नहीं हुए, उनको राजा ने श्रावकों से अलग किया और जो पास हुए उनके हृदय पर काकिणी रत्न से तीन २ रेखा का एक चिह्न कर दिया। पीछे प्रत्येक छह २ महीने के बाद राजा नवीन श्रावकों की परीक्षा करता था और इसमें जो पास होते थे उनको फिर वैसी ही निशानी कर देता था। इस प्रकार सच्चे श्रावक प्रतिदिन भरत चक्रवर्त्ती के वहां भोजन करते थे।

चक्रवर्त्ती की प्रेरणा से "जितो भवान् वर्द्धते भीस्तस्मान्माहन माहन" आप जीत गये हैं, भय बढ़ा करता है,

---

* जो सच्चे श्रावक थे वे उन बीज पर नहीं चले और दूसरे चले।

अपने आपको सुपात्र कहने लगे। मुग्ध लोगों को ठगने के लिये अपने को इष्ट दान, क्रिया और आचार गर्भित नवीन शास्त्र वे अपनी इच्छानुकूल रचने लगे। साधुओं के अभाव से अज्ञ लोग उनको सद्गुरु मानने लगे, कारण कि वृक्ष रहित प्रदेश में एरण्ड ही बड़े वृक्ष की तरह माना जाता है। मुग्ध लोग उनके वचनों को वेदपद की तरह सत्य मानने लगे। 'जन्मांध मनुष्य को किसान के बतलाये हुए मार्ग में भी क्या संदेह होता है? अर्थात् नहीं होता।' इस प्रकार आहिस्ते २ वे माहण, जिनमत के द्रोह को करने वाले हो गये। 'बिना स्वामी के राज्य में क्या कोटवाल चोरी नहीं करता?'

इस प्रकार प्रथम प्रभु के अठानवे पुत्रों का भरत ने प्रतिपेध किया उसका वर्णन किया है। अब बाहुबली का भी उसी प्रकार प्रतिपेध किया उसका वृत्तान्त कहा जाता है—

एक दिन राजाओं, अमात्यों, सार्थवाहों, श्रेष्ठियों, नटलोगों और भाट-चारणों से सेवित और राजसभा में बैठे हुए श्री भरतेश्वर को नमस्कार करके सेनापति ने इस प्रकार विनति की—'हे स्वामिन्! चक्र अभी तक आयुधशाला में प्रवेश नहीं करता।' उस समय भरतेश्वर बोले—भरतक्षेत्र में मेरी आज्ञा को नहीं मानने वाला अभी

कौनसा वीर शत्रु को जीतना बाकी रह गया है ?' यह सुनकर वृद्ध मन्त्री बोला—'हे देव ! प्रताप में सूर्य के समान आपको भरतक्षेत्र में, मनुष्य या देव कोई भी जीतने योग्य देखने में नहीं आता, तो भी देवताओं से अधिष्ठित चक्र आयुधशाला में प्रवेश नहीं करता इसलिये विचारने योग्य है। हाँ ! इस समय याद आया कि बलवानों के बल को दबाने वाला बहली देश का स्वामी और आपका छोटा भाई वीर 'बाहुबली' अभी तक आपकी आज्ञा नहीं मानता। एक तरफ आपकी समस्त सेना हो और एक तरफ फक्त बाहुबली हो, तो भी समानता नहीं हो सकती। जैसे सम्पूर्ण ज्योतिचक्र के साथ सूर्य की समानता नहीं हो सकती।

पृथ्वी पर आप महा बलवान् स्वामी हैं और स्वर्ग में इन्द्र स्वामी है, परन्तु हे देव ! इस समय तो आप दोनों से भी बाहुबली जबरदस्त है। 'अवश्य ! इस एक को भी मैं नहीं जीत सका तो भारतभूमि में मैंने क्या जीता ?' ऐसा मानकर यह चक्र लज्जित होता है, इसलिये आयुधशाला में नहीं आता, ऐसा मैं मानता हूँ। साठ हज़ार वर्ष तक संग्राम करके समस्त राजाओं को वश में करने वाले आपका छोटा भाई इस प्रकार अनादर करे तो सारे जगत् में आपकी हँसी होना वास्तविक है। कहा है कि—

स्वेष्ववज्ञास्पदं तन्व-न्नाज्ञेश्वर्यं परेषु यत् ।
नरोऽनास्तृतखट्वोर्ध्वो-ल्लोचवद्धस्यते जनैः ॥

'पलंग के ऊपर कुछ भी बिछाए बिना उसके माथे चाँदनी बाँधने वाले मनुष्य की जैसे, जो मनुष्य अपने सगे सम्बन्धियो में अपमान पाता है वह यदि शत्रु के ऊपर अपनी आज्ञा का ऐश्वर्य चलाने लगे तो लोकों मे हास्यास्पद होता है ।

इस प्रकार मन्त्री के वचनो से प्रेरित, अपने छोटे भाई के दुर्विनय से दुःखित और वैरभीरु होने से सामभेद से ही छोटे भाई को वश करने की इच्छा वाले भरत ने दूत-कला को अच्छी तरह जानने वाले सुवेग नाम के दूत को अच्छी तरह समझा बुझा कर, अच्छे परिवार के साथ बाहुबली के पास भेजा। उस समय दूत के उठते ही दाहिनी ओर छींक हुई, रथ के ऊपर चढ़ते समय वस्त्र का छोर खूंटे मे फॅस गया, 'यह कार्य करने में भाग्य विपरीत है' मानो ऐसा कहता हो, वैसे रास्ते मे जाते समय बायां नेत्र बारम्बार फड़कने लगा, अशुभ को सूचित करने वाले हरिण दाहिनी ओर से बायीं ओर जाने लगे, कष्ट को सूचित करने वाली दुर्गा (शकुन चीड़ी) भी उसके बायीं ओर गई, उसके गमन को रोकने के लिये मानो दैव ने आज्ञा

कौनसा वीर शत्रु को जीतना बाकी रह गया है ?' यह सुनकर वृद्ध मन्त्री बोला—'हे देव ! प्रताप में सूर्य के समान आपको भरतक्षेत्र में, मनुष्य या देव कोई भी जीतने योग्य देखने में नहीं आता, तो भी देवताओं से अधिष्ठित चक्र आयुधशाला में प्रवेश नहीं करता इसलिये विचारने योग्य है। हाँ ! इस समय याद आया कि बलवानों के बल को दबाने वाला बहली देश का स्वामी और आपका छोटा भाई वीर 'बाहुबली' अभी तक आपकी आज्ञा नहीं मानता। एक तरफ आपकी समस्त सेना हो और एक तरफ फक्त बाहुबली हो, तो भी समानता नहीं हो सकती। जैसे सम्पूर्ण ज्योतिचक्र के साथ सूर्य की समानता नहीं हो सकती।

पृथ्वी पर आप महा बलवान् स्वामी हैं और स्वर्ग में इन्द्र स्वामी है, परन्तु हे देव ! इस समय तो आप दोनों से भी बाहुबली जबरदस्त हैं। 'अवश्य ! इस एक को भी मैं नहीं जीत सका तो भारतभूमि में मैंने क्या जीता ?' ऐसा मानकर यह चक्र लज्जित होता है, इसलिये आयुधशाला में नहीं आता, ऐसा मैं मानता हूँ। साठ हज़ार वर्ष तक संग्राम करके समस्त राजाओं को वश में करने वाले आपका छोटा भाई इस प्रकार अनादर करे तो सारे जगत् में आपकी हँसी होना वास्तविक है। कहा है कि—

प्राण तक भी अर्पण करके स्वामी का हित करने वाले तथा प्रसन्न रहने वाले, ऐसे वहली देश के लोगों को रास्ते में वारंवार बुलाता हुआ वह सुवेग दूत समृद्धि से स्वर्गपुरी समान तथा खाई और सुवर्ण के ऊंचे किला से परिवेष्टित, ऐसी तक्षशिला नगरी में आ पहुंचा।

वहां विस्तीर्ण होने पर भी आने जाने वाले मनुष्यों की भीड़ से संकुचित लगते हुए राजमार्गों का अवलोकन करता हुआ, अनेक प्रकार की वस्तुओं को रखने वाले परदेशी लोगों को, और अनेक प्रकार की वस्तुओं से भरी हुई दुकानों को देख कर मानो राजा के भाग्योदय से ही यहां आ पड़े हैं ऐसी कल्पना करता हुआ, अच्छे अलंकार वाले, रूप और सौभाग्य से सुशोभित देवों के समान ऋद्धि वाले श्रेष्ठियों को आश्चर्यपूर्वक देखता हुआ, और रास्ते के विक्षेप से विस्मृत होगई हुई अपने स्वामी की शिक्षा को स्मरण करता हुआ, सुवेग दूत आहिस्ते २ राजमहल के सिंहद्वार (मुख्य दरवाज़ा) आगे आया। पीछे जगत् में अद्वितीय बल वाले, विशाल ऐश्वर्य और संपदा वाले, जिसको दुःख से देख सके ऐसे स्वाभाविक तेज की शोभा से सूर्य के समान कुमार, मंत्री, सामन्त और सार्थवाह आदि अनेक जिसके चरणों की सेवा कर रहे हैं ऐसे, चारों तरफ़ से अपने सेवकों को प्रेम दृष्टि से देखता

ही रही हो, वैसे नन्हा सा नाग सर्प उसके आगे होकर आड़ा उतरा। इस प्रकार के विघ्नों को सूचित करने वाले अपशकुनों के मालूम होने पर भी, स्वामी के आदेश को पालन करने वाला सुवेग दूत बिना रुके चलने लगा।

रास्ते में यमराज की राजधानी के समान भयंकर, सिंह बाघ आदि से व्याप्त, ऐसी विशाल अटवी (जंगल) का उल्लंघन करके, सर्वत्र अतिशय बलवान् बाहुबली राजा की अन्याय की अर्गला (आगल) समान आज्ञा से हरिण भी जहां एक पैर से खड़े हो रहे हैं, समस्त गाँव, नगर, पट्टन और कर्बट जहाँ समृद्धि वाले हैं और जहाँ सब सुख शान्ति वाले राज्य से हर्षित हैं, ऐसे बहली देश में वह आया। वहाँ सर्वत्र वह आदिनाथ भगवान् और बाहुबली राजा की हर्ष पूर्वक गोपालों के द्वारा गाई हुई स्तुति को सुनता हुआ, भरत महाराजा के भय से अनार्य देशों से भाग कर मानो इस देश का आश्रय लिया हो ऐसे करोड़ों म्लेच्छों को देखता हुआ, जिनका दान ही एक व्रत है ऐसा श्रेष्ठिवर्ग से मीठे वचनों के द्वारा दान लेने के लिये विनती कराते हुए याचकों को प्रत्येक गाँव और शहरों में देखता हुआ, भरत क्षेत्र के स्वामी भरत महाराजा को भी नहीं जानने वाले, सुनन्दा सुत (बाहुबली) को ही समस्त जगत् का स्वामी मानने वाले और अपने

प्राण तक भी अर्पण करके स्वामी का हित करने वाले तथा प्रसन्न रहने वाले, ऐसे वहली देश के लोगों को रास्ते में बारंबार बुलाता हुआ वह सुवेग दूत समृद्धि से स्वर्गपुरी समान तथा खाई और सुवर्ण के ऊंचे किला से परिवेष्टित, ऐसी तक्षशिला नगरी में आ पहुँचा।

वहाँ विस्तीर्ण होने पर भी आने जाने वाले मनुष्यों की भीड़ से संकुचित लगते हुए राजमार्गों का अवलोकन करता हुआ, अनेक प्रकार की वस्तुओं को रखने वाले परदेशी लोगों को, और अनेक प्रकार की वस्तुओं से भरी हुई दुकानों को देख कर मानो राजा के भाग्योदय से ही यहाँ आ पड़े है ऐसी कल्पना करता हुआ, अच्छे अलंकार वाले, रूप और सौभाग्य से सुशोभित देवों के समान ऋद्धि वाले श्रेष्ठियों को आश्चर्यपूर्वक देखता हुआ, और रास्ते के विक्षेप से विस्मृत होगई हुई अपने स्वामी की शिक्षा को स्मरण करता हुआ, सुवेग दूत आहिस्ते २ राजमहल के सिंहद्वार (मुख्य दरवाज़ा) आगे आया। पीछे जगत् में अद्वितीय बल वाले, विशाल ऐश्वर्य और संपदा वाले, जिसको दुःख से देख सके ऐसे स्वाभाविक तेज की शोभा से सूर्य के समान कुमार, मंत्री, सामन्त और सार्थवाह आदि अनेक जिसके चरणों की सेवा कर रहे है ऐसे, चारों तरफ़ से अपने सेवकों को प्रेम दृष्टि से देखता

रूप अग्नि से वह इस समय मन में बहुत सन्ताप पाता है, इसलिये आप वहाँ आकर आपके समागम रूप जल से उसको शान्त करें। आप उसके सगे भाई ही हैं और इस समय उसका सापत्न्य (शत्रु) भी है। हे राजन्! चक्री के सम्पूर्ण राज्य मे अन्धे को लकड़ी के समान आप एक ही भाई है। बन्धुओं के वियोग से दुःखित हुए बड़े भाई को मिलने के लिये वहाँ आपके आने की बहुत राह देखी जा रही है। कहा है कि—

स निःस्वोऽपि प्रतिष्ठावान्, सेव्यते यः स्वबंधुभिः।
तैः समृद्धोऽप्यवज्ञातः प्रतिष्ठां तु न विन्दति ॥

'जो अपने बन्धुओं से सेवाता है अर्थात् बन्धु वर्ग जिसकी सेवा करता है वह निर्धन होने पर भी प्रतिष्ठा वाला है और लक्ष्मीपात्र होने पर भी बन्धुओं से अवज्ञा पाता है वह प्रतिष्ठा के योग्य नहीं हो सकता।' इन्द्र की जैसे तेजस्वी और अखण्ड शासन वाले भरतेश्वर का समस्त राजाओं ने बारह वर्ष तक निरन्तर असाधारण उत्सव पूर्वक छः खण्ड भरत के ऐश्वर्य का अभिषेक किया, इस शुभ अवसर में आप व्यवहार में कुशल होने पर भी वहाँ न आये· जिससे कितने ही लोग शंका करने लगे है कि 'आप दोनों भाई में परस्पर कलह है।' हे राजन्! यह

हकीकत मित्रों के हृदय में अत्यन्त दाह तुल्य है और दूसरों के विघ्न में सन्तुष्ट होने वाले शत्रुओं के मन में सन्तोषकारक है। इसलिये हे भूपते! सार्वभौम ज्येष्ठ बन्धु के पास तुरन्त आकर उसकी सेवा करो कि जिससे शत्रुओं के मनोरथ मन में ही नाश हो जायँ। बुद्धिशाली, दाता, तेजस्वी, न्याय में चतुर और लक्ष्मी वाले बड़े भाई को यदि आप स्वामी मानेंगे तो अवश्य ! सुवर्ण में सुगन्ध जैसा होगा। सार्वभौमपन से भी आप उसकी सेवा करेंगे तो वह सेवा बड़े भाई के विनय और स्नेह को लोक में प्रकाशित करेगी। फिर ऐसा भी मन में न समझना कि उसका अपमान करने से भ्रातृभाव के कारण मेरा अप्रिय नहीं करेगा। क्योंकि युद्ध में स्वजन सम्बन्ध नहीं माना जाता। जिस स्वामी के रोष और तोष का फल प्रत्यक्ष देखने में आवे ऐसे स्वामी की, अपना भला चाहने वाले को तो सेवा ही करनी चाहिये, अनादर कभी भी नहीं करना चाहिये। संग्राम में समस्त राजाओं को लीलामात्र में जीतकर, क्षुद्र हिमवन्त पर्वत तक उसने भारत भूमि को आधीन कर लिया है और अयस्कान्त मणि (चुम्बक) जैसे लोहखण्ड को खींचती है, वैसे प्रकृष्ट पुण्य से खिंचकर मनुष्य, देव और असुर सेवा करने के लिये भरतेश्वर के पास आते हैं। मनुष्य और देव तो दूर रहे, परन्तु सौधर्मेन्द्र भी अपना

अर्द्ध आसन देकर उसका बहुमान करता है। गर्व से उस की अवज्ञा करने वाले सैन्य के साथ रण-संग्राम में, भरतेश्वर के सैन्यरूप समुद्र की भरती आते ही सथवा के चूर्ण की मुठी की तरह उड़ जाता है। समस्त पृथ्वी को प्लावयमान करने वाले जिनके हाथी, घोड़े, रथ और सुभटों को समुद्र के तरंगों की तरह कौन रोक सकता है ? एक दम आती हुई संख्यावन्ध शत्रुओं की सेना को रोकने के लिये उनका एक सुषेण सेनापति भी समर्थ है। जिसने लीलामात्र में समस्त शत्रुओं को पराजित किया है, ऐसा कालचक्र की तरह आता हुआ चक्रायुध को कौन रोक सकता है ? भाग्य से आकर्षित होकर इच्छित समस्त वस्तुओं के भण्डार रूप नव निधान सर्वदा उनके पैर के नीचे चलते हैं। जिससे हे राजन् ! कर्णकटुक होने पर भी परिणाम में हितकारक मेरा कहा हुआ यदि आप मानते हों तो एकाग्रभाव से वहां आकर सम्राट् की सेवा करो। आप मेरे स्वामी के लघुबन्धु हैं, इसलिये स्नेह से इस प्रकार कहना पड़ता है। अब आप उचित समझें वैसा करें; कारण कि बुद्धि कर्मानुसारिणी है।

इस प्रकार सुवेग दूत के कोमल और कठोर वचनों को सुन कर ऋषभ स्वामी के पुत्र बाहुबली राजा इस प्रकार कहने लगे—"हे सुवेग ! नवोढ़ सम्पूर्ण होने पर

भी बहुत दूर रहने वाले अपने सम्बन्धी का कुशल समाचार उसके पास से आये हुए मनुष्य से पूछना यह दूषण नहीं है और लोभी हृदय वाले भरत का छोटे भाइयों के प्रति प्रेम तो उनके राज्य ग्रहण करने से ही मालूम हो जाता है, तो तेरे इन मृषा वचनों से क्या विशेष है? दूसरों के राज्य को ग्रहण करने में व्यग्र होने से ही बड़े भाई ने इतना समय तक छोटे भाइयों के राज्य न लिये, ऐसा मैं मानता हूं। कारण कि जैसे जठराग्नि दूसरे आहार के अभाव में आतर धातुओं को भी ग्रहण करता है, वैसे दूसरे राज्य-ग्रहण के व्यापार का अभाव होते ही इस समय भाइयों के राज्य ले लिये हैं। 'बड़े भाई ने तुच्छता की, तो भी बड़े भाई के साथ युद्ध कैसे हो?' ऐसी दाक्षिण्यता से ही निर्लोभी होकर छोटे भाइयों ने दीक्षा स्वीकार ली है। मैं ऐसा लोभ रहित प्रकृति वाला और दाक्षिण्यता वाला नहीं हूँ। तेरा अन्न स्वामी अत्यन्त लोभी हो गया मालूम होता है, कि जिससे पिता के दिये हुए मेरे राज्य को भी वह छीन लेने को तैयार हो गया है। परन्तु हे भद्र, ऐसा करने से वह अपने घर के घी से भी अवश्य भ्रष्ट होंगे। छोटे भाइयों का राज्य ले लेने से ही उसने कुटुम्ब में कलह बोया है, तो अब मैं उसके साथ कलह करूँ इसमें मेरा क्या दोष? वह तू ही कह। यदि

छोटे अपने ऊपर बड़े का अकृत्रिम स्नेह देखे, तो जैसे गौ के पीछे बाछरड़ी फिरा करती है वैसे उसके पीछे २ फिरा करे· किन्तु भरत तो ऐसा स्नेही नहीं है। प्रथम तीर्थङ्कर, परम ब्रह्मरूप, स्वर्ग और मोक्ष के गवाह रूप एक पिताजी ही हमारे स्वामी है। परन्तु 'मिथ्याभिमानी और धान्य के कीट समान भरत हमारा स्वामी' ऐसी किंवदन्ती भी हमारे हृदय में लज्जा उत्पन्न करती है। अब तो कभी भ्रातृस्नेह से भी मैं उसकी सेवा करूं तो भी अवश्य लोकों के मुख पर ढक्कन न होने से 'यह चक्रीपन से उस की सेवा करता है' ऐसे बोलते हुए वे किस प्रकार रुक सके ? संग्राम के प्रसंग मे और स्वजन-सम्बन्ध के अभाव से वह मेरे राज्य को सहन न कर सकेगा· तो मैं भी उसके छह खण्ड के राज्य को सहन नहीं करूंगा। मैं मानता हूँ कि—जैसे सेनापति समस्त राजाओं को जीत कर ऐश्वर्य अपने स्वामी को देता है· वैसे मेरे लिये ही उसने इतना ऐश्वर्य उपार्जन किया है। कहा है कि—

कष्टार्जिताया निर्भाग्यैः श्रियो भोक्ता भवेत् परः।
दलितेक्षो रदैर्दुःखा–ज्जिह्वैवाप्नोति तद्रसम्॥

'भाग्य रहित पुरुषों के कष्टों से उपार्जित की हुई लक्ष्मी को भोगने वाला दूसरा ही होता है। दांत कष्ट से इक्षु (गन्ना) को चाबते है· परन्तु उसका रस (स्वाद) तो

आडम्बर तो शोभामात्र है। रणसंग्राम में चढ़ते समय वे अपने प्रचण्ड बाहुदण्ड को ही हृदय में सहायकारक मानते हैं। मेरे भाई के बाहुबल को तो मैं पहले से ही जानता हूं। कारण कि बाल्यावस्था मे क्रीड़ा करते समय मैं उसको सैकड़ों बार आकाश में उछालता था, और पीछे 'अरे! यह बेचारा मर जायगा' इस प्रकार देवों के कहने से नीचे गिरते समय मै दया लाकर उसको दो हाथों से बीच से ही पकड़ लेता था। इस समय वह ऐश्वर्य वाला हो गया है, जिससे वह सब भूल गया हो ऐसा मालूम होता है, कि अब वह इस प्रकार मुझे आज्ञा करता है। उसके इतने ऐश्वर्य को जो मै सहन करता हूं, यही मेरा सेवा है। कारण कि बाघ के पास तो ऐसा ही भेजना कि जिसका वह भक्षण न कर सके। अब अन्त में इतना ही कहता हूं कि वीर अभिमानी भरत यदि मेरे से सेवा चाहता हो तो एक बार अपनी वीरता संग्राम में मुझे बतलावे। इस लिये हे सुवेग! तू शीघ्र ही जा कर तेरे स्वामी को कहे कि—जैसे केसरी सिंह पलान को नहीं सहता, वैसे बाहुबली आपकी आज्ञा सहन नहीं करता।' इस प्रकार वीरता से संग्राम को सूचित करने वाली अपने स्वामी की वाणी को कुमार, मंत्री और सामन्तों ने हर्ष पूर्वक स्वीकार कर लिया।

अब क्रोधायमान होते हुए अंगरक्षकों ने अपने स्वामी की आज्ञा से दूत को जीवित ही जाने दिया। तब सुवेग दूत कुछ धैर्य रख कर तुरन्त ही सभा में से उठकर चलने लगा। रास्ते चलते समय उसने नागरिक लोकों का इस प्रकार परस्पर वार्तालाप सुना—"यह नवीन पुरुष कौन है? यह भरत का दूत है। वह भरत कौन? बाहुवली का बड़ा भाई। वह इस समय कहाँ है? अयोध्या में राज्य करता है। उसने इसको यहाँ क्यों भेजा? अपनी सेवा के लिये बाहुवली को बुलाने के लिये। तब तो वह दुर्दैव से मतिहीन हुआ मालूम होता है, क्योंकि तीन जगत् को जीतने वाले अपने छोटे भाई के बाहुबल को वह मूर्ख नहीं जानता क्या? यह अनुभव ज्ञान तो उसको बाल्यावस्था में था, परन्तु इस समय मीठे बोलने वाले अपने मनुष्यों के वचनों से उत्तेजित होकर ये सब भूल गया मालूम होता है। परन्तु मीठे २ बोलने वाले ये सब युद्ध में अवश्य भाग जायँगे और भरत अकेला बाहुबली के बाहुबल की व्यथा को सहन करेगा। अरे! विचार पूर्वक सलाह देने वाला उसके पास कोई मूषक भी मंत्री नहीं है? उसके पास तो बहुत बुद्धिशाली प्रधान हैं। तब ऐसा अहित कारक कार्य करते समय उसको क्यों नहीं रोका? अरे! उन्होंने ही इस कार्य में उसको प्रेरित

किया है। कारण कि जो होनहार है वह अन्यथा नहीं होता। तब तो इस मूढ़ ने आज अवश्य सोता हुआ सिंह को जगाया है और वायु के सामने अग्नि जलाया है। इसलिए बाहुबली समस्त पृथ्वी जीतने को समर्थ होने पर भी अपने ठिकाने वह सुख से बैठ रहा था, तो भी इसने बाहुबली को अपना शत्रु बना दिया यह अच्छा नहीं किया।" इस प्रकार नगरवासियों की उक्ति प्रत्युक्ति को सुनता हुआ वह दूत तक्षशिला नगरी से शीघ्र ही बाहर निकल गया।

अब रास्ते चलते समय वह दूत इस प्रकार विचारने लगा कि—'अहो! अपना महाराजा ने यह बिना विचारा कार्य किया है! छह खंडों के राजाओं से सेवाते हुए उसको क्या कम था, कि 'वाहन के लिये केसरी सिंह की जैसे' अपनी सेवा के लिये इसको बुलवाया? अरे! अपने को कुशल मानने वाले और कुल परंपरा से आये हुए मंत्रियों को भी धिक्कार हो कि जिन्होंने अपने स्वामी को इस समय ऐसा अत्यन्त दुःसाध्य कार्य में प्रवृत्त किया। अब यह कार्य करने में या छोड़ने में दोनों प्रकार शुभ-कारक नहीं होगा। कहते हैं कि—'साँप ने छछूंदर को पकड़ा' अब इसको छोड़ दे तो अंधा हो जाय और निगल जाय तो मर जाय।

जइ गलइ २ उयरं पच्चुगालिए गलंति नयणाइं।
हा विसमा कज्जगइ अहिणा छच्छुन्दरी गहिया ॥

'यदि साँप छछूंदर को पकड़े, किन्तु उसको निगल जाय तो पेट गल जाय और छोड़ दे तो नेत्र नष्ट हो जाय। अहा ! इस प्रकार कार्य की गति विषम हो गई है।' फिर 'इसने जाकर दोनों भाइयों में परस्पर विरोध कराया इस प्रकार मेरा भी अवर्णवाद होगा, इसलिये गुण को दूषण लगाने वाला इस दूतपन को धिक्कार है।" इत्यादि अनेक प्रकार के संकल्प विकल्पों से व्याकुल मन वाला वह क्रमशः अयोध्या पहुँच कर श्याम मुख से अपने स्वामी को नमा। 'बाहुबली के पास से यह अपमान पाकर आया हुआ मालूम होता है' ऐसा उसका मुख देखने से ही समझ गये, तो भी मन में रंज हुए विना भरत महाराजा ने उसको पूछा—'हे भद्र ! शाखा और प्रशाखा वाला विशाल वट वृक्ष की तरह विस्तार वाले बलिष्ठ बाहुबली कुशल है ? वह कहे कि जिससे मुझे हर्ष हो।

इस प्रकार आदर पूर्वक अपने स्वामी के पूछने से वह सुवेग दूत मन में कुछ सन्तोष पाकर और विनय से मस्तक नमा कर कहने लगा कि—'सचमुच ! चक्रवर्ती के चक्र को और इंद्र के वज्र को भी सेके हुए पापड़ की तरह

एक मुठी से ही चूर्ण कर डाले ऐसा बाहुवली है । प्रसंगो-पात्त आपका सेनापति और सैन्यादिक का मैंने वर्णन किया, तब 'इससे क्या !' ऐसा कह कर दुर्गन्ध से जैसे नाक मरोड़े वैसे वह अपनी गर्दन मरोड़ने लगा । पुत्र पौत्र और प्रपौत्र आदि करोड़ो जहां अत्यन्त बाहुवल वाले हैं, फिर सचमुच ! गिरते हुए आकाश को भी रोक सके ऐसे उसके कुमार हैं । उस वीराधिवीर आपके छोटे भाई का अमंगल करने मे देवो का देव (इंद्र) भी असमर्थ है, ऐसा मैं मानता हूं ।' इस प्रकार कुशलता पूर्वक चक्री के किये हुए प्रश्न का उत्तर देकर, पीछे बाहुवली के उस प्रकार के उच्च नीच वचनो को विस्तार पूर्वक अपने स्वामी के आगे अच्छी तरह निवेदन किया । अन्त में उसका तत्त्व (सारांश) इस प्रकार कहा—'आपकी सेवा के लिये मधुर और कठोर शब्दों से उसको मैंने बहुत कहा, परन्तु जैसे मदोन्मत्त हाथी अंकुश को नहीं समझता, वैसे उसने नहीं माना । गर्व से जिसके हाथ में निरन्तर खाज चला करती है ऐसा प्रबल बाहुदंड वाला प्रतापी आपका छोटा भाई यहां युद्ध करने की इच्छा से आ सकता है, परन्तु आपकी सेवा करने के लिये नहीं आ सकता । फिर हे प्रभो! अति भक्ति वाले, तेजस्वी और बड़े उत्साही ऐसे सामन्त राजा और सुभट भी उसके विचार से लेशमात्र भी भिन्न नहीं

एक मुठी से ही चूर्ण कर डाले ऐसा बाहुबली है। प्रसंगोपात्त आपका सेनापति और सैन्यादिक का मैंने वर्णन किया, तब 'इससे क्या!' ऐसा कह कर दुर्गन्ध से जैसे नाक मरोड़े वैसे वह अपनी गर्दन मरोड़ने लगा। पुत्र पौत्र और प्रपौत्र आदि करोड़ों जहाँ अत्यन्त बाहुबल वाले हैं, फिर सचमुच! गिरते हुए आकाश को भी रोक सके ऐसे उसके कुमार है। उस वीराधिवीर आपके छोटे भाई का अमंगल करने मे देवों का देव (इंद्र) भी असमर्थ है, ऐसा मैं मानता हूं।' इस प्रकार कुशलता पूर्वक चक्री के किये हुए प्रश्न का उत्तर देकर, पीछे बाहुबली के उस प्रकार के उच्च नीच वचनो को विस्तार पूर्वक अपने स्वामी के आगे अच्छी तरह निवेदन किया। अन्त में उसका तत्त्व (सारांश) इस प्रकार कहा—'आपकी सेवा के लिये मधुर और कठोर शब्दों से उसको मैंने बहुत कहा, परन्तु जैसे मदोन्मत्त हाथी अंकुश को नहीं समझता, वैसे उसने नहीं माना। गर्व से जिसके हाथ में निरन्तर खाज चला करती है ऐसा प्रबल बाहुदंड वाला प्रतापी आपका छोटा भाई यहां युद्ध करने की इच्छा से आ सकता है, परन्तु आपकी सेवा करने के लिये नहीं आ सकता। फिर हे प्रभो! अति भक्ति वाले, तेजस्वी और बड़े उत्साही ऐसे सामन्त राजा और सुभट भी उसके विचार से लेशमात्र भी भिन्न नहीं

श्रेष्ठ ऐसा अष्टापद* आलान स्तम्भ को, सिंह अन्य श्वापदो (पशु) के आवाज को और जातिवन्त घोड़ा चाबुक के प्रहार को कभी सहन नही कर सकता।' बलवान् लघु बन्धु से मैं सर्वथा प्रशंसनीय हू। कारण कि एक भुजा कमजोर हो तो उसके प्रमाण में दूसरी बलिष्ठ लगती है। स्त्री, धन, पुत्र और सुभट इत्यादि जगत् मे मिलना सुलभ है, परन्तु विशेष करके ऐसा बलवान् बन्धु कहीं भी प्राप्त नही हो सकता। पहले सेवा के लिये मैंने छोटे भाइयों को बुलवाया था जिससे उन्होंने तुरन्त ही दीक्षा स्वीकार करली, यह शरम आज तक भी मेरे हृदय में नहीं समाती। इस बलवान् छोटे भाई ने 'मेरी आज्ञा इस पृथ्वी पर प्रख्यात हैं' ऐसा जो माना है, तो पीछे ऐसे ऊंच नीच वचनों से वह मेरी अवज्ञा करे या तो अपराध सहन करने से लोक मुझे अशक्त कहे, परन्तु इस बन्धु के साथ मैं विरोध करना नही चाहता।' इस प्रकार कहने बाद अपने कथन की योग्यायोग्य स्पष्टता के लिये भरत ने स्नेह दृष्टि से सभासदों के सामने देखा। तब बाहुबली ने की हुई अवज्ञा से और स्वामी ने की हुई

---

* आठ पग वाला पशु विशेष, यह हाथी से अधिक बलवान् होता है।

बड़े पुरुष धन, सेवक, पुत्र, मित्र कलत्र और अन्त में अपने प्राण का भी भोग देकर अपनी उन्नति को बढ़ाना चाहते है। हे देव! यदि ऐसा न होता तो आपके राज्य में आपको क्या न्यूनता थी, कि जिससे इतना बड़ा दिग्विजय आपने किया? परन्तु ये सब वृद्धि के लिये ही किये हैं। मानी पुरुष शत्रु से पराभव होने के भय से किसी प्रकार भी अपना तेज कायम रखने के लिये जीवित को सुख पूर्वक छोड़ देते है। कारण कि मान का मूल स्वतेज ही है। जैसे वणिग् लोग धन के योग (नवीन प्राप्त करना) और रक्षण का विचार किया करते है, वैसे बड़े पुरुषों को भी हमेशा समस्त उपायों से अपने तेज के योग और रक्षण के कारण विचारने चाहिये। हे स्वामिन्! शीतल प्रकृति वाले बनिये की सरलता ही प्रशंसनीय है: परन्तु जिसको तेज ही प्रधान है, ऐसा क्षत्रिय यदि सरलता रक्खें तो वह हास्यास्पद होता है। तेजस्वी प्रकृति वाले पुरुषों से शत्रु प्रायः डरते ही रहते है और सरल स्वभावी हो तो शत्रुओं से सर्वदा पराभव पाते है। कहा है कि—

तुल्येऽपराधे स्वर्भानु–र्भानुमन्तं चिरेण यत्।
हिमांशुमाशु ग्रसते तन्म्रदिम्नः स्फुटं फलम्॥

दोनों का तुल्य अपराध होने पर भी* राहु चन्द्रमा को वारम्वार ग्रहण करता है और सूर्य को वहुत काल में ग्रहण करता है। यही सरलता का प्रत्यक्ष फल है।' हे प्रभो! राजाओं के मुकुटों से स्पर्शित चरण वाले और तीव्र तेज वाले आपका यह बाहुवली बन्धु, जैसे राहु सूर्य के तेज का विनाशक है वैसे आपके तेज का निश्चय विनाश कारक है। समस्त राजाओं पुष्पमाला की तरह आपकी आज्ञा अपने मस्तक पर धारण करते हैं और आपका लघु-बन्धु आपकी आज्ञा को नहीं मानता जिससे वह अवश्य शत्रुरूप ही है। अपनी भुजा के वल के गर्व से वह आपको तृण समान मानता है, इसलिये हे प्रभो! यदि आप भारत-वर्ष का चक्रवर्त्ती हो तो इस दुरात्मा को आधीन करो। हे स्वामिन! सव शत्रुओं का नाश करने वाला यह चक्र भी आयुधशाला में प्रवेश नहीं होता है, यही मेरे कहे हुए भाव को ही दृढ़ करता है। हे भरताधीश! यदि मैं कुछ अयुक्त बोलता हूं तो ये बुद्धि के निधान अमात्य भी मुझे खुशी से युक्तिपूर्वक रोकें।'

---

* राहु के साथ चन्द्र और सूर्य को समान वैर है ऐसा अन्य शास्त्रों मे कहा है उसमे सूर्य प्रतापी होने से उसका ग्रहण कचित ही होता है और चन्द्रमा नरम होने से उसका ग्रहण वारम्वार होता है। यह सारांश है।

इस प्रकार सेनापति का कथन सुनकर, नीतिज्ञ मुख्य प्रधान उठकर स्वामी को कहने लगा—"हे देव! पराक्रमी और स्वामीभक्त इस सेनापति का कहना योग्य ही है। हे स्वामिन्! स्नेहरहित लघुबन्धु के ऊपर जो आपका स्नेह है, वह वेश्या के ऊपर का स्नेह जैसा है। जिससे हे विभो! सचमुच आप एक हाथ से ताली बजाने जैसा करते हैं। मुख में मिष्ट और मन में दुष्ट ऐसी वेश्याओं से भी मुख और मन दोनों में दुष्ट ऐसा आपका लघुबन्धु तो बढ़ जाता है। फिर समस्त राजाओं को जीतने वाले और उनके नेता आपका इस लघुबन्धु से यदि पराजय हो जाय, तो समुद्र से पार पाने वाले को गोष्पद में डूबने जैसा है। भाई के साथ युद्ध करने के लिये सैन्ययुक्त जाते समय [illegible] लोक में अवर्णवाद (निन्दा) होगा, ऐसी भूंठी शंका भी आपको मन में नहीं लाना चाहिये। कारण कि जो सपत्नी (सोकर) का बहिनपन और [illegible] का सहो-पन उनमें स्वतः वैर ही मिलता है. जिससे यह सहोदर तो फक्त नाम का ही होता है. अर्थात् [illegible]। परस्पर के तेज को नहीं सहने वाले मनुष्यों में [illegible] भाई प्रायः स्वभाव से ही शत्रु होता है। इसमें भी राजाओं में तो विशेष करके शत्रुभाव होता है। [illegible] करने वाले भाई को शत्रु समझ कर, [illegible]

गये। स्वामी के कार्य में उत्साह वाले, शत्रुओं के हृदय में दाह देने वाले और रत्नों के मुकुटों को धारण करने वाले ऐसे हज़ारों राजाओं, समस्त सामग्री से युक्त और शत्रुओं से सहन न हो सके ऐसे पराक्रम वाले चौरासी लाख रथ वाले, चौरासी लाख घोड़ेसवार और चौरासी लाख हाथी की सवारी करने वाले वहाँ इकट्ठे हो गये। आकाश में लीला पूर्वक उछाल २ कर शस्त्रों को ग्रहण करते हुए भक्ति वाले और श्रम को जीतनेवाले करोड़ों (९६करोड़) वीर सुभट भी वहाँ आ पहुँचे।

इस प्रकार समस्त सैन्य से घिरे हुए और चारों दिशाओं में शत्रुओं को कम्पायमान करते हुए चक्रवर्ती ने बहली देश के तरफ़ प्रयाण किया। उस समय समस्त शत्रुओं को विनाश करने की उत्कंठा से मानो शीघ्रता उत्पन्न हुई हो, ऐसा चक्ररत्न चक्रवर्ती के आगे आकाश मार्ग में चलने लगा।

'इतने सैन्य के परिवार वाला यह राजा कहाँ जा रहा है ?' यह तो स्वेच्छा पूर्वक वसुधा का अवलोकन करने के लिये निकला होगा।' 'तो जिसने समस्त शत्रुओं को वशीभूत कर लिया है, ऐसा यह चक्र आगे क्यों चलता है ?' 'तब तो भरतक्षेत्र में भी इसको कोई शत्रु जीतना बाकी रहा होगा।' 'परन्तु इसका शत्रु तो कोई नज़र

गये। स्वामी के कार्य में उत्साह वाले, शत्रुओ के हृदय में दाह देने वाले और रत्नों के मुकुटों को धारण करने वाले ऐसे हज़ारों राजाओं, समस्त सामग्री से युक्त और शत्रुओं से सहन न हो सके ऐसे पराक्रम वाले चौरासी लाख रथ वाले, चौरासी लाख घोड़ेसवार और चौरासी लाख हाथी की सवारी करने वाले वहां इकट्ठे हो गये। आकाश में लीला पूर्वक उछाल २ कर शस्त्रों को ग्रहण करते हुए भक्ति वाले और श्रम को जीतनेवाले करोड़ो (९६ करोड़) वीर सुभट भी वहां आ पहुंचे।

इस प्रकार समस्त सैन्य से घिरे हुए और चारों दिशाओं में शत्रुओं को कंपायमान करते हुए चक्रवर्त्ती ने वहली देश के तरफ़ प्रयाण किया। उस समय समस्त शत्रुओं को विनाश करने की उत्कंठा से मानो शीघ्रता उत्पन्न हुई हो, ऐसा चक्ररत्न चक्रवर्त्ती के आगे आकाश मार्ग में चलने लगा।

'इतने सैन्य के परिवार वाला यह राजा कहां जा रहा है?' यह तो स्वेच्छा पूर्वक वसुधा का अवलोकन करने के लिये निकला होगा।' 'तो जिसने समस्त शत्रुओं को वशीभूत कर लिया है, ऐसा यह चक्र आगे क्यों चलता है?' 'तब तो भरतक्षेत्र में भी इसको कोई शत्रु जीतना बाकी रहा होगा।' 'परन्तु इनका शत्रु तो कोई दीखता

नहीं है।' 'अरे! इस सम्राट् को कोई जीतने योग्य हो या न हो, परन्तु इसका छोटा भाई इन्द्र के जैसा बलवान् बाहुबली जीतना चाहता है।' 'तब तो इसको जीतने के लिये ही इस राजा की तैयारी दीखती है।' अहो! तब तो यह बिना विचारा काम करता है। कारण कि यहाँ इसका विजय होगा, तो भी इसकी अल्प ही प्रतिष्ठा होगी, परन्तु यदि पराजय हुआ तो इसकी बड़प्पन में बहुत बड़ी हानि होगी। कहा है कि—

अन्यच्च भ्रातृ पुत्राद्या दक्षैः क्वचन दुर्नये ।
शिक्षणीया रहस्येव द्वयानां लघुतान्यथा ॥

'कभी भाई या पुत्रादिक की किसी जगह भूल हो जाय, तो चतुर मनुष्यों ने उनको एकान्त में ही शिक्षा देनी चाहिये; अन्यथा (ऐसा न करे तो) दोनों की लघुता होती है।'

'जिसने छह खंड का राज्य अपने आधीन किया है, ऐसे राजा को अपने लघुभ्राता के राज्य की क्या न्यूनता थी?' 'अहो! इतना ऐश्वर्य वाला होने पर भी इसको न लोभ है? अवश्य! बड़े पुरुषों को भी कषायों को जीतना बहुत कठिन है।' इस प्रकार सम्राट् के प्रयाण के समय गाँव २ और शहर २ के मार्ग में सर्व लोग परस्पर बातचीत करते थे।

सैन्य के बहुत भार से शेषनाग की ग्रीवा को नमाते हुए, अविच्छिन्न वाद्यों के शब्दों से वसुन्धरा को शब्दायमान करते हुए, सैन्य की बहुलता से समस्त सीमा में घास और जल को दुर्लभ करते हुए, परन्तु शत्रुओं के मुखों में घास और उनकी स्त्रियों की आँखों मे जल को सुलभ करते हुए (अर्थात् शत्रु मुख में तृण लेकर बैठते थे और उनकी स्त्रियें आंख में आंसू ला रही थीं)। कल्पांतकाल के क्षुभित समुद्र की तरंगों की तरह अपनी सेना से 'यह राजा तो शीघ्र ही पराजित हुआ' ऐसे मानता हुआ, लघुबंधु को मिलने के लिये ही मानो उत्कंठित हुआ हो, ऐसे अत्यन्त हठ में आकर रास्ते में अविच्छिन्न प्रयाण को वेग से करता हुआ और सर्वत्र अपना विजय हो जाने से यहां भी अपने को जयशील मानता हुआ भरत नरेन्द्र बाहली देश की सीमा के पास आ पहुंचा।

विजय प्राप्त करने की इच्छा वाला अपना बड़ा भाई अपनी सीमा (हद) के नज़दीक आ पहुंचा है, ऐसा अपने चरलोगों से जान कर उसी समय नरेन्द्र बाहुबली राजा ने भी रणभेरी बजवाई और नगर में से बाहर निकल कर उसके सन्मुख गया। वास्तव में वीर पुरुष शत्रुओं से किया हुआ अपनी सीमा के उल्लंघन को सहन नहीं कर सकते।

हाथ में काष्ट की कृपाण (खड्ग) को कम्पाता हुआ, लड़ने जाने वाले अपने पिता को 'मैं भी आपके साथ आऊंगा' इस प्रकार कहने लगा। इस प्रकार माता, पत्नी आदि ने रणकर्म में उत्तेजित किये हुए स्वामी भक्त करोड़ों सुभट बाहुबली के पिछाड़ी चले। धीर, वीर आदि गुण वाले और चतुरंगिणी सेना से युक्त सुनन्दा-सुत (बाहुबली) भी शीघ्र दी अपने देश की सीमा के किनारे पर आ पहुंचा।

अपनी २ छावनी में साम सामने ठहरे हुए वे दोनों ऋषभदेव के पुत्र, प्रलयकाल में उठत हुए पूर्वसमुद्र और पश्चिम समुद्र के जैसे दिखने लगे। उस रात्रि के समय बाहुबली ने समस्त राजाओं की सम्मति से शूरवीर अपने सिंहरथ नाम के पुत्र को सेनापति स्थापित किया, और अपने स्वयं समस्त राजाओं के समक्ष उसके मस्तक पर मानो साक्षात् अपना प्रताप हो ऐसा सुवर्ण पट्ट बांधा। उस समय स्वामी के सत्कार से [illegible]

[illegible]

उस समय किसी स्त्री ने संग्राम में उत्कंठा वाले अपने पुत्र को पति के सामने इस प्रकार कहा—'हे वत्स! युद्ध में इस प्रकार पराक्रम बतलाना, कि जिससे किसी प्रकार का विकल्प उत्पन्न न हो। किसी स्त्री ने पुत्र को कहा कि—'हे पुत्र! मैं वीर पुरुष की पुत्री और वीर पुरुष की पत्नी हूँ, इसलिये संग्राम में तू इस प्रकार लड़ना कि जिससे मैं वीर प्रसूता भी हो जाऊँ।' कोई स्त्री अपने पति को इस प्रकार कहने लगी कि—'हे कान्त! रणांगण में मुझे हृदय में रखकर पीछे पैर नहीं करियेगा। कारण कि इस लोक और परलोक में आप ही मेरे आधार हैं (अर्थात् यहाँ आपके पीछे सती होऊँगी और परभव में आपकी देवी होऊँगी)।' संग्राम में जाने वाले किसी पुरुष ने अपनी प्रिया के मुख ऊपर स्नेह पूर्वक पत्रवल्ली रची, तब उसका मित्र हास्य पूर्वक उसको कहने लगा—'हे मित्र! आज तो अश्व (घोड़े) ही सजावट के योग्य हैं, परन्तु स्त्री सजावट के योग्य नही। कारण कि लड़ाई में तो घोड़े के साथ ही अपने शत्रुओं के प्रहार सहन करने हैं।' यह सुन कर वह स्त्री कहने लगी—'रस्सी से बंधे हुए घोड़े तो संग्राम में बलात्कार से मारे जाते हैं, परन्तु स्त्रियें तो अपने आप पति के पिछाड़ी मरती है। जिससे उसकी यह बलिक्रिया है।' कोई बालक शौर्य से अपने

हाथ में काष्ट की कृपाण (खड्ग) को कम्पाता हुआ, लड़ने जाने वाले अपने पिता को 'मैं भी आपके साथ आऊँगा' इस प्रकार कहने लगा। इस प्रकार माता, पत्नी आदि से रणकर्म में उत्तेजित किये हुए स्वामी भक्त करोड़ों सुभट बाहुबली के पिछाड़ी चले। धीर, वीर आदि गुण वाले और चतुरंगिणी सेना से युक्त सुनन्दा-सुत (बाहुबली) भी शीघ्र ही अपने देश की सीमा के किनारे पर आ पहुँचा।

अपनी २ छावनी में साम सामने ठहरे हुए वे दोनों ऋषभदेव के पुत्र, प्रलयकाल में उद्यत हुए पूर्वसमुद्र और पश्चिम समुद्र के जैसे दिखने लगे। अब रात्रि के समय बाहुबली ने समस्त राजाओं की सम्मति से शूरवीर अपने सिंहरथ नाम के पुत्र को सेनापति स्थापनि किया, और अपने स्वयं समस्त राजाओं के समक्ष उसके मस्तक पर मानो साक्षात् अपना प्रताप हो ऐसा सुवर्ण पट्ट बांधा। उस समय स्वामी के सत्कार से वह कुमार, अमात्य और राजाओं में, जैसे ताराओं में चन्द्रमा शोभे वैसे अपने तेज से अधिक शोभने लगा। उस समय भरत महाराजा भी अपने कुमार अमात्य और सामन्तों को इस प्रकार शिक्षा देने लगा—'हे स्वामीभक्तो! तुम लोगों ने इस समस्त भारत भूमि को साधन किया, परन्तु इसमें पृथ्वी, पानी

या पर्वतों में, वैसे विद्याधर या देवताओं में कोई भी बल-वान् तुम्हारे सामने हो ऐसा नहीं मिला, परन्तु यहाँ तो एक २ वीर जन भी संग्राम में शत्रुओं की *अक्षौहिणी सेना को हटाने में समर्थ हैं, ऐसे बाहुबली के पुत्र पौत्रादिक तो दूर रहे, परन्तु उनके महा बलवान् और महा उत्साही एक पदाति (पैदल) के धीर वीर आदि गुणों के तुल्य हो सके ऐसा यहाँ कोई भी मालूम नहीं होता। इसलिये इस समय जो इनके सैन्य के साथ लड़ेगा, वही वसुन्धरा में सच्चा वीर माना जायगा। कारण कि 'जो महालक्ष्मी की दृष्टि में आया वही सच्चा समझना।' इसके सैन्य के साथ युद्ध करने वाले की स्वामीभक्ति, संग्राम में उत्कण्ठा और बाहुशक्ति अब यथार्थ मालूम होगी, इसलिये बलवान् बाहुबली के इस युद्ध में क्षत्रिय तेज का भण्डार सुषेण सेनापति रत्न को भक्तिमान्, कृतज्ञ, पराक्रमी और अपने स्वामी का जय चाहने वाले तुम सब अब समस्त कार्यों में मेरी तरह समझना।' इस प्रकार कुमार, अमात्य और सामन्तों को शिक्षा देकर उसी समय भरत महाराजा ने सुषेण सेनापति के मस्तक ऊपर सैन्य के भार रूप मुकुट स्थापित किया। इस तरह

---

* इस सेना में २१८७० रथ, २१८७० हाथी, ६५६१० घोड़े और १०९३५० पैदल होते हैं।

अपने स्वामी के सत्कार से वह महा बलवान् सेनापति शत्रुओं का उच्छेद करने में द्विगुण उत्साह वाला होगया।

अब युद्ध के श्रद्धा वाले वे दोनों सैन्य के सुभट प्रातःकाल सेनापति के आदेश के पहले ही परस्पर युद्ध करने को तैयार हो गये। उस समय संग्राम का भेरीनाद सुनकर शूर वीर सुभटों के शरीर इतने फूल गये कि उनके शरीर पर बख़्तर भी न आ सके। पीछे हाथी वाले हाथी वालों के साथ, घोड़े वाले घोड़े वालों के साथ, पैदल पैदलों के साथ और और रथ वाले रथ वालों के साथ, इस प्रकार न्याययुद्ध से सुभट लड़ने लगे। दीन वचन बोलने वाले, लड़ना नहीं चाहने वाले, मुख में अँगुली या तृण डालने वाले, भागने वाले, पड़े हुए, ऐसे योद्धाओ को एक दूसरे के सुभट नहीं मारते थे। कितनेक तो वहाँ शत्रु के भय से डरपोक होकर भागने की इच्छा वाले योद्धाओं को सामने के योद्धे उनके पिता आदि के वंश कीर्त्तन से उत्तेजित करके पीछे उसके साथ लड़ते थे। इस प्रकार प्रतिदिन अपने २ स्वामी का विजय चाहने वाले परस्पर युद्ध करते हुए दोनों पक्ष के योद्धाओं में से संख्यातंध सुभट नाश हो गये। परंतु अपने २ सेनापति के पद सब काम का बोझा रखने से धीर वीर उन दोनों महाराजाओं को उसकी कुछ भी खबर न पड़ी।

इस प्रकार कितनाक काल व्यतीत होने बाद इतने अधिक प्राणियों का क्षय होता हुआ जान कर, उसका निवारण करने के लिये दयालु कितनेक देव वहां आये और विजय को चाहने वाले एवं क्रोध पूर्वक लड़ते हुए सुभटों को उन्होंने श्री ऋषभदेव की आण देकर युद्ध से रोक दिये। जिनाज्ञा से निवृत्त हुए योद्धाओं उस समय इस प्रकार विचारने लगे—'ये देव अपने पक्ष के हैं या शत्रु पक्ष के हैं ? कारण कि युद्ध में उत्कण्ठित मन वाले अपने को युद्ध में अन्तराय करने वाले इन पापियों ने या उनको प्रेरणा करने वालों ने उलटा वैर का पोषण किया हैं।' अब वे देव प्रथम भरतेश्वर के पास आकर 'चिरंजय' ऐसा आशीर्वाद पूर्वक विनय से इस प्रकार कहने लगे—'हे राजन्! छह खण्ड भरतक्षेत्र के राजाओं को लीला-मात्र से ही जीतने पर भी सिंह की इच्छा मृगालों (सियालों) से पूरी न हो, वैसे उन्हों से आपकी युद्ध श्रद्धा पूर्ण न हुई, जिससे उसको पूरी करने के लिये इस बलिष्ठ लघु बन्धु के साथ यह महा भयंकर युद्ध आपने आरम्भ किया है। परन्तु हे विचारज्ञ! यह सचमुच आपको योग्य नहीं है। यह तो दाहिनी भुजा से बायीं भुजा को काटने का कार्य आप करते हैं। सचमुच जनों के हित करने वाले आप सर्वज्ञ प्रभु के पुत्र हैं, जिससे आपको संख्याबन्ध

मनुष्यों का क्षय हो ऐसा उद्यम करना योग नहीं है। फिर महत्व और इच्छा रहित अरिहन्त के पुत्र होकर हे राजन्! राज्य के लोभ से परस्पर युद्ध करने में आपको लज्जा भी नहीं आती? चाटु वचन बोलने वाले लाखों राजाओं से सेवाते हुए भी इस कनिष्ठ बन्धु की सेवा के बिना क्या आपको न्यून था? इसलिये हे नराधीश! अकाल में प्रलयकाल के जैसे इस युद्ध से निवृत्त हो और अपनी राजधानी में वापिस चले जाओ। आप यहाँ आये तब समयज्ञ बाहुबली भी सामने आया है, परन्तु आप चले जायँगे तो यह लघुबन्धु भी वापिस चला जायगा और संग्राम के आरम्भ का क्रम निवृत्त होने से तुम्हारे दोनों सैन्य का परस्पर होता हुआ संहार भी तुरंत ही रुक जायगा। हे राजन्! वसुन्धरा पर अकाल में उत्पन्न हुआ यह युद्ध इस प्रकार शान्त हो जाय, समस्त राजा लोग स्वस्थ होकर रहें और प्रजा सुखी रहे।'

इस प्रकार देवों का कथन सुनकर भरतेश्वर बोले— 'हे देव! हित को चाहने वाले आपके बिना दूसरा कौन इस प्रकार कहे? कहा है कि—

परेषां कलहे प्रायः सर्वः कौतुकमिच्छितुम्।
यज्जनो मिलति क्षिप्रं कोपि भंक्तुं न तं पुनः॥

'समस्त लोक प्रायः दूसरों के कलह में कौतुक देखने के लिये तुरन्त ही इकट्ठे होते हैं, परन्तु कलह को तोड़ने के लिये कोई भी नहीं आता।' हे देव! 'मैं बलवान हूँ' ऐसा अभिमान से लघुबन्धु के साथ युद्ध करने की मेरी इच्छा ही नहीं है। कारण कि सुवर्ण की कटारी भी अपने पेट में नहीं मारी जाती। 'इसके राज्य को मैं ग्रहण कर लेऊँ' ऐसा लोभी भी मैं नहीं हूँ। मैं तो उलटा इसको जो नहीं है ऐसा दूसरा राज्य भी देने चाहता हूँ। परन्तु चिरकाल दिग्विजय करके घर आये हुए बड़े भाई को यह मदोन्मत्त मिलने भी न आया। अवर्णवाद के डर से इसका यह अपराध भी मैंने तो सहन कर लिया, परन्तु स्वामीभक्त वीर सेवक यह नहीं सहन कर सके। कभी वे भी सहन करलें, परन्तु आयुधशाला में नहीं पैठने वाला चक्ररत्न शत्रुओं का सम्पूर्ण नाश किये बिना सन्तुष्ट नहीं होता। अपनी भुजा के बल के गर्व से मुझे यह नहीं नमता। जब तक एक भी नमा बिना रहे, तब तक चक्र आयुधशाला में नहीं आता और चक्र आयुधशाला में प्रवेश न करे तो चक्रवर्त्ती को बहुत लज्जा कारक है। इसलिये यह विरुद्ध होने पर भी बन्धु के साथ मैंने युद्ध आरंभ किया।' इस प्रकार भरतेश्वर का कहना यथार्थ समझ कर देवता

वहाँ से आज्ञा लेकर युक्तिपूर्वक वाहुवली को समझाने के लिये उसके पास गये ।

अपने पास देवता आते ही वाहुवली ने भी उनका स्वागत किया । कारण कि सज्जन लोग अपने घर कोई आवे तब उसका विनयोपचार करना नहीं भूलते । अब वे बलवान् वाहुवली को विनय से कहने लगे—'हे वाहुवली! बड़े भाई के साथ आपको यह अनुचित कलह कैसा? कारण कि कुशल, कुलीन और महा बलिष्ठ आपका भी इस पूज्य के सम्बन्ध में विनयोचित वर्त्तन होना चाहिये । कहा है कि—

नमन्ति फलिता वृक्षा नमन्ति कुशला नराः ।
शुष्कं काष्ठं च मूर्खाश्च भज्यन्ते न नमंति च ॥

'फलित वृक्ष और कुशल मनुष्य नमते हैं, तथा शुष्क काष्ठ और मूर्ख मनुष्य नाश हो जाय तो भी नहीं नमते।' इसलिये नमने योग्य भरतेश को आप तुरन्त आ करके नमो । कारण कि पूज्य के सत्कार की मर्यादा का उल्लंघन करना, यह भविष्य में कभी लाभदायक नहीं होता । अद्भुत ऐश्वर्य पाने पर भी कुलीन मनुष्य नम्र ही रहते हैं और उस प्रकार के वैभव का अभाव होने पर भी क्षुद्र मनुष्य कभी नम्र नहीं रहते । कहा है कि—

कोटिद्वितयलाभेऽपि नतं सद्वंशजं धनुः ।
अवंशजः शरः स्तब्धो लक्ष्यस्यापि हि लिप्सया ॥

'दोनों कोटि (पक्ष) का लाभ होने पर भी अच्छे वंश (बांस) से उत्पन्न हुआ धनुष्य नम्र रहता है और अवंशज (बांस से न बना हुआ) बाण निशान की इच्छा से अकड़ रहता है। अर्थात् दो कोटि वाला धनुष्य—पक्ष में दो करोड़ द्रव्य वाला मनुष्य नमता है। कारण कि वह सुवंश से—अच्छे बांस से (पक्ष में अच्छे कुल से) उत्पन्न होने से और लक्ष की इच्छा वाला बाण—पक्ष में लाख की इच्छा वाला मनुष्य सद्वंशी न होने से—बांस से उत्पन्न न होने से (पक्ष में अच्छे कुल में उत्पन्न न होने से) नमता नहीं है।' हे राजन्! यदि आप उसके अद्भुत ऐश्वर्य की इच्छा करते हो, तो लीला मात्र से जीते हुए सब अतुल ऐश्वर्य वाला भरतेश आपको देने के लिये तैयार है। अपने भुजबल से प्राप्त किया हुआ इतना ऐश्वर्य वह स्वजन प्रेमी भरत अपने भाइयों को बाँट कर भोगने को चाहता है। इसलिये हे सौम्य! द्रव्य और भाव से अभिमान का त्याग करके घर आये हुए और सेवक को सुरतरु (कल्पवृक्ष) समान अपने बड़े भाई की सेवा करो, कि जिससे आपके संग्राम से होता हुआ इसलोक

और परलोक में अहितकारक करोड़ों मनुष्य, हाथी और घोड़ाओं का संहार रुके।'

इस प्रकार देवों की हितशिक्षा अच्छी तरह सुनकर वीराधिवीर बाहुबली गंभीरता पूर्वक इस प्रकार बोला— 'हे देव! अधिक २ राज्यलक्ष्मी का लोभी वह अनेक राजाओं को लेकर, सुखपूर्वक बैठा हुआ मेरे सामने जब युद्ध करने के लिये यहां आया, तब ऐसे बड़े भाई के साथ युद्ध करने में मेरा क्या दोष है? इसका आप स्वयं विचार करें। फिर वह विजयशील होने से सर्वत्र अपने को विजयी मानता है। कारण कि भादवा महीना में उसकी आँख चली गई हो वह समस्त पृथ्वी को हरी और आर्द्र (जल वाली) ही मानता है। जैसे लीलामात्र से वृक्षों को उखाड़ने वाला हाथी पर्वत को भेदने के लिये जाता है, वैसे ही अभिमान से वह मुझे भी जीतने के लिये आया है, परंतु संग्राम मे लीलामात्र से इसका पराजय करके अहंकार से उत्पन्न हुए ज्वर को सुवैद्य की तरह मैं नाश कर दूंगा। मनोहर गुणों से ही महत्वता (बड़प्पन) प्राप्त होती है, परंतु अवस्था का उस के साथ सम्बन्ध नहीं है। कारण कि सबसे पवन वयोवृद्ध होता है, तो भी वह कुछ बहुमान करने योग्य नहीं है। शरीर पर बहुत समय से लगा हुआ दुर्गन्ध मैल का त्याग करने में आता है और तुरंत के खिले हुए फूलों

कोटिद्वितयलाभेऽपि नतं सद्वंशजं धनुः ।
अवंशजः शरः स्तब्धो लक्षस्यापि हि लिप्सया ॥

'दोनों कोटि (पक्ष) का लाभ होने पर भी अच्छे वंश (वांस) से उत्पन्न हुआ धनुष्य नम्र रहता है और अवंशज (वांस से न बना हुआ) वाण निशान की इच्छा से अकड़ रहता है। अर्थात् दो कोटि वाला धनुष्य—पक्ष में दो करोड़ द्रव्य वाला मनुष्य नमता है। कारण कि वह सुवंश से—अच्छे वांस से (पक्ष में अच्छे कुल से) उत्पन्न होने से और लक्ष की इच्छा वाला वाण—पक्ष में लाख की इच्छा वाला मनुष्य सद्वंशी न होने से—वांस से उत्पन्न न होने से (पक्ष में अच्छे कुल में उत्पन्न न होने से) नमता नहीं है।' हे राजन्! यदि आप उसके अद्भुत ऐश्वर्य की इच्छा करते हो, तो लीला मात्र से जीते हुए सब अतुल ऐश्वर्य वाला भरतेश आपको देने के लिये तैयार है। अपने भुजबल से प्राप्त किया हुआ इतना ऐश्वर्य वह स्वजन प्रेमी भरत अपने भाइयों को बाँट कर भोगने को चाहता है। इसलिये हे सौम्य! द्रव्य और भाव से अभिमान का त्याग करके घर आये हुए और सेवक को सुरतरु (कल्पवृक्ष) समान अपने बड़े भाई की सेवा करो, कि जिससे आपके संग्राम से होता हुआ इसलोक

और परलोक में अहितकारक करोड़ों मनुष्य, हाथी और घोड़ाओं का संहार रुके।'

इस प्रकार देवों की हितशिक्षा अच्छी तरह सुनकर वीरशिरोमणि बाहुबली गंभीरता पूर्वक इस प्रकार बोला— 'हे देव! अधिक २ राज्यलक्ष्मी का लोभी वह अनेक राजाओं को लेकर, सुखपूर्वक बैठा हुआ मेरे सामने जब युद्ध करने के लिये यहां आया, तब ऐसे बड़े भाई के साथ युद्ध करने में मेरा क्या दोष है? उसका आप स्वयं विचार करें। फिर वह विजयशील होने से सर्वत्र अपने को विजयी मानता है। कारण कि भादवा महीना मे उसकी आँख चली गई हो वह समस्त पृथ्वी को हरी और आर्द्र (जल वाली) ही मानता है। जैसे लीलामात्र से वृक्षों को उखाड़ने वाला हाथी पर्वत को भेदने के लिये जाता है, वैसे ही अभिमान से वह मुझे भी जीतने के लिये आया है, परंतु संग्राम मे लीलामात्र से उसका पराजय करके अहंकार से उत्पन्न हुए ज्वर को सुवैद्य की तरह मैं नाश कर दूंगा। मनोहर गुणों से ही महत्वता (बड़प्पन) प्राप्त होती है, परंतु अवस्था का उस के साथ सम्बन्ध नहीं है। कारण कि सबसे पर्वत वयोवृद्ध होता है, तो भी वह कुछ बहुमान करने योग्य नहीं है। शरीर पर बहुत समय से लगा हुआ दुर्गन्ध मैल का त्याग करने में आता है और तुरंत के खिले हुए फूलों

को मनुष्य मस्तक पर धारण करते है। पिताजी ने दिये हुए छोटे भाइयों के राज्य छीन कर, उसने अपने गुणों को तो प्रथम से ही प्रकट कर दिया है। मर्यादा से रहित लोभी, दाक्षिण्य रहित और मदोन्मत्त इत्यादि उसके किस गुण से मैं नमस्कार करूँ? हे मध्यस्थ देव! यह आप ही कहो। चतुर पुरुष मनुष्यों की नम्रता को गुण रूप मानते हैं, परन्तु गुण के अभाव में वह भी दोपसूचक होता है। कहा है कि—

अर्जयत्यद्भुतां लक्ष्मीं गुणां प्रति नमन्धनुः।
विनां गुणां नमत्काष्टं वक्रं त्वपयशः पुनः॥

'गुण से नमता हुआ धनुष्य अद्भुत लक्ष्मी को उपार्जित करता है, परन्तु गुण रहित नमा हुआ काष्ट वक्र (टेढ़ा) और अनादरणीय होता है।' अर्थात् डोरी के साथ नमता हुआ धनुष् लक्ष वेध करता है, परन्तु सामान्य काष्ट टेढ़ा ही हो तो वह उलटा वक्र कहा जाता है। उसने प्राप्त किये हुए ऐश्वर्य को मैं भोगने की इच्छा करूँ, यह तो सिंह को दूसरे ने मार कर दिया हुआ मांस के बराबर है। इसलिये वह मुझे लेशमात्र भी सन्तोष के लिये नहीं है। कारण कि भारतवर्ष के छह खण्ड के समस्त ऐश्वर्य को स्वाधीन करने में और उसका शीघ्र ही निग्रह करने में मुझे एक घड़ी मात्र लगे, परन्तु स्वराज्य और

स्वदारा से सन्तुष्ट मेरा मन परस्त्री और परलक्ष्मी को तृण तुल्य मानता है। पाप के आगामी दुःसह फल को हृदय में समझने वाला एक राज्यमात्र के लिये दूसरे पर निःशंक होकर कौन द्रोह करे? छोटे भाइयों के साथ जिसका प्रेम देखने में आया है, ऐसा वह विभाग करने को नहीं चाहता, परंतु आप बचाव का झूठा आडम्बर बतलाने वाला वह मेरा राज्य लेने के लिये ही यहां आया है। अति खिंचने से तुरंत टूट जाता है, अति भरने से तुरंत फूट जाता है और अति बिलोने से विष तुल्य हो जाता है, इतना भी वह क्या नहीं जानता? दूसरे समस्त राजाओं के राज्य उसने ले लिये, जिससे अति लोभ से पराभूत होकर वह मेरा राज्य ले लेने के लिये ही मुझे भी बुलाता है, परन्तु घर बैठे हुए मुझे उसका राज्य दिलाने के लिये ही उसके मंत्री जिम्मेवारी की तरह उन को यहां खींच लाया है, ऐसा मैं मानता हूं। अभी भी दूसरों के कहने से स्वयं वापिस चला जाय तो इसी से आदर, मेरे हृदय में लेशमात्र भी लोभ नहीं है। मैंने इस की राज्यलक्ष्मी की अवश्य उपेक्षा ही की है। इसलिये अभी भी उस अनात्मज्ञ (अपने आपको न जानने वाले) को युद्ध से रोको। उदीरणा (प्रेरणा) करके किसी के साथ भी मैं कभी युद्ध करता ही नहीं हूं, परन्तु अंत में

गये हुए ग्रास की तरह अनायास से प्राप्त हुए युद्ध की मैं उपेक्षा नहीं करता।'

इस प्रकार पराक्रम से उत्तेजित और युक्तिगर्भित उसके वचनों से देवता निरुत्तर होकर, फिर इस प्रकार कहने लगे—'चक्ररत्न आयुधशाला में प्रवेश करे, इसके लिये ही इस समय आपके साथ युद्ध करते हुए चक्री को कौन रोक सके ? और अनायास से प्राप्त हुए युद्ध को नहीं छोड़ते हुए आपको भी कैसे रोक सके ? कारण कि तेज का भण्डाररूप क्षत्रियों का यही कुलाचार है, परंतु सौजन्य से सुशोभित आप दोनों भाइयों का परस्पर युद्ध अवश्य जगत् के दुर्भाग्य से ही उपस्थित हुआ है। तो भी हे याचितार्थ कल्पवृक्ष ! हम आपको प्रार्थना करते हैं कि आप दोनों स्वयं परस्पर उत्तम युद्ध से लड़ें। दोनों लोक में विरोधी और संख्याबंध प्राणियों का विनाशकारक यह मध्यम युद्ध करना आपको योग्य नहीं है। स्वल्प आरम्भ से दृष्टि आदि का युद्ध ही यहाँ उत्तम है और इस युद्ध से भी आपका जय पराजय स्पष्ट समझने में आवेगा।' इस प्रकार देवों का वचन बाहुबली ने करुणा बुद्धि से स्वीकार लिया और पीछे भरत राजा के पास वे देव गये, जिससे उसने भी गर्व सहित स्वीकार किया।

पीछे बाहुबली के छड़ीदारों ने हाथी पर बैठ कर, ऊँचा हाथ करके संग्राम के लिये तैयार हुए अपने सुभटों को इस प्रकार कह कर युद्ध से रोके—"संग्राम की खाज़ जिसके बाहुदण्ड में रही हुई है, ऐसे अपने स्वामी को देवताओं ने प्रार्थना की· जिससे वे भरत महाराजा के साथ शरीर मात्र से (बिना शस्त्र) ही युद्ध करेंगे। इसलिये हे सुभटो! अब युद्ध सम्बन्धी शत्रुओं का द्वेष छोड़ दो और क्रूर संग्राम कर्म से निवृत्त हो। स्वामी की रणकुशलता तुम्होंने पहले कभी देखी न थी· इसलिये आज आश्चर्य-पूर्वक विकसित नयन से तटस्थ होकर वह देखो।" इस प्रकार स्वामी की आज्ञा से छड़ीदारों ने रोके हुए भी युद्ध में उत्कण्ठावाले वे खेदपूर्वक हृदय में इस प्रकार विचारने लगे—"चिरकाल से राह देखते हुए इस युद्ध का पर्वदिन आज अपने को प्राप्त हुआ· परन्तु अहो! हस्त के ग्रास की तरह दुर्दैव ने यह प्रसंग हटा दिया। सम्पूर्ण भारतवर्ष में भरतेश के सिवाय दूसरा ऐसा कोई नहीं है कि जो अपने भुजबल से युद्ध करने के लिये अपने स्वामी को बुलावे। इसलिये अवश्य! अपने इतना अधिक शस्त्रपरि-श्रम वृथा ही किया और स्वामी का ज्ञान भी भाग्यहीनों की तरह वृथा गया। कारण कि दैवयोग से स्वामी के बन्धु के साथ यह रणसंग्राम प्राप्त होने पर भी आज

परिणाम में हितकारक नहीं लगता।" इस प्रकार पराजय की शंका रूप शल्य से व्याकुल मन वाले अपने सैनिकों को चेष्टा से समझ कर भरतेश्वर कहने लगा—"असाधारण वल के स्थान रूप तुम्हारे से मैं घिरा हुआ हूँ; जिससे कोई भी वलवान् शत्रु संग्राम करने के लिये मेरे पास नहीं आया· जिससे तुम्होंने कभी भी मेरा वाहुवल नहीं देखा, इसलिये यहाँ पराजय की शंका करते हो। कारण कि प्रेम अस्थान में भी भय की शंका करता है। इसलिये शत्रुओं से सहन न हो सके ऐसा मेरा वाहुवल एकवार तुम देखो, कि जिससे मन की शंका दूर हो जाय।"

ऐसा कह कर चक्री ने अपने मनुष्यों के द्वारा एक बड़ा खड्डा खुदवाया और उसके किनार पर सिंहासन रखवा कर उसके ऊपर स्वयं बैठा। पीछे वहुत मजबूत और लंबी लंबी हजारों लोह की शृङ्खला (सॉकल) और प्रतिशृङ्खला भरत महाराजा ने अपने हाथ में बँधवाई और बत्तीस हज़ार राजाओं को इस प्रकार आदेश किया कि—'सर्व सैन्ययुक्त समस्त वल से महावलवान् तुम सव मेरे भुजवल की परीक्षा करने के लिये मुझे शीघ्र ही खिंच कर इस खड्डे में गिरा देना। इस कार्य में मेरी अवज्ञा होगी ऐसी लेशमात्र शंका तुमको नहीं करनी। फिर आज रात्रि में इस प्रकार का दुःस्वप्न मेरे देखने में आया है· जिससे अपने

दिव्य पुष्प और अक्षत आदि से भक्ति पूर्वक पूजा की। पीछे विधि पूर्वक आरति और मंगल दीपक करके श्रद्धा पूर्वक स्वामी की इस प्रकार यथार्थ गुणस्तुति करने लगे— 'धर्म कर्म सम्बन्धी मार्ग को दिखाने वाले, आठ कर्मों से विमुक्त और मुक्तिरूप वधू के स्वामी हे प्रथम तीर्थेश ! आप जयवन्त रहो। केवलज्ञान से सूर्य समान और संसारसागर में डूबते हुए प्राणियों को तारने वाले हे त्रिभुवनाधीश ! आप जयवन्त रहो। ताप में से निकला हुआ सुवर्ण की जैसी कान्ति वाले हे त्रैलोक्यलोचन ! आप जयवन्त रहो। राजाओं और देवेन्द्रों से सेवित हे वृषभध्वज ! आप विजय पाओ।' इस प्रकार स्तुति नमस्कार करके महाउत्साही और महाबलवान् वे दोनों सर्वांगसज्ज होकर रणभूमि में आये।

प्रथम दृष्टि युद्ध में निर्निमेष और रक्त नेत्र जिन्होंने एक दूसरे के सामने रखे हुए हैं, ऐसे वे दोनों प्रतिज्ञा पूर्वक दृष्टियुद्ध करते हुए बहुत समय तक स्थिर रहे। उस समय आकाश में रहे हुए देवताओं ने, पिछाड़ी रहे हुए देवताओं ने और पिछाड़ी रहे हुए सैनिकों ने इन्द्रियसम्बन्धी व्यापार को छोड़ने वाले योगियों की जैसे उन दोनों को आश्चर्यपूर्वक देखा। पीछे पानी से झरते हुए चक्री के दोनों नेत्र मानो बाहुबली के नेत्र का तेज सहन

दोनों वीरों में से चक्री का नाद अधम पुरुष की मैत्री की तरह धीरे २ क्षीण हो गया और अति बलवान बाहुबली का नाद दिन के पश्चाद् भाग की तरह क्रमशः अधिक २ बढ़ने लगा। इस प्रकार चक्री न जीतने के बाद बाहुयुद्ध करने की इच्छा वाले उसने नगर के मुख्य द्वार की अर्गला के जैसी अपनी भुजा फैलाई। तब बाहुबली ने चक्री की भुजा को कमलनाल की तरह तुरन्त नमा दी और वज्र जैसी अपनी भुजा फैलाई। चक्री ने अपने समस्त बल से उसको नमाने के लिये बहुत प्रयत्न किया, तो भी बहुत समय में इसको कुछ भी चलायमान न कर सका। बाहु-युद्ध में भी इस प्रकार पराजय होने से भग्न चक्री का मुख श्याम हो गया। तब तेज का भण्डार रूप बाहुबली फिर उसको कहने लगा—'हे भरतेश बन्धु! इस युद्ध में भी पूर्ववत् काकतालीय न्याय से मेरा जय हुआ है, ऐसा आप न कहें। अभी भी आपकी इच्छा हो तो अपने मुष्टि-युद्ध करें।' यह सुनकर प्रसन्नतापूर्वक चक्री मुष्टियुद्ध में लड़ने के लिये उठे। कारण कि जुआ की तरह युद्ध में भी पराजय स्वादिष्ट लगता है, अर्थात् हार जुआरी दूना खेलता है। इस समय राजा का उदित देखने वाले सागर भाट कूर्म, दिग्गज, शेषनाग और वराह आदि जो थे वे मन में इस प्रकार कहने लगे—'वह कैसे [illegible] [illegible]

हुआ। अभी ऐसा पश्चात्ताप करने से क्या ? अभी तो आकाश से यह गिर कर नाश न हो जाय, इतने में उसको अधर ही पकड़ लूं।' ऐसा विचार करके उसने आकाश में स्थिर दृष्टि रखा, तब बहुत समय पीछे गिरते हुए उसको देखकर अधर से ही पकड़कर धीरे से नीचे रखा। द्वेष होने पर भी भाई के स्नेह से ऐसा किया, जिसके बल से आश्चर्य पाये हुए देवों ने उस समय बाहुबली के मस्तक पर पुष्पवृष्टि की। पीछे इस प्रकार के पराभव से लज्जित होकर भरतेश ने क्रोध से बाहुबली के छाती पर तुरंत ही मुष्टिप्रहार किया। यह प्रहार दृढ़ होने पर भी जैसे वज्र के पर घन का प्रहार निष्फल हो जाय और कृतघ्न पर किया हुआ उपकार निष्फल हो जाय, उसी प्रकार वज्रतुल्य हृदयस्थल में दृढ़ निष्फल हुआ। पीछे जिसको कोपाग्नि प्रदीप्त हुई है ऐसा बलवान् बाहुबली ने चक्री की छाती में वज्रतुल्य मुष्टि प्रहार किया। इसके आघात से भरत को चक्कर आगया और अत्यन्त दुःखी होते हुए वह मानो समस्त विश्व चक्र पर पड़ा हो वैसे क्षणवार चारों ओर देख रहा। पीछे तत्काल देशुद्ध हो गया और मूर्छा से जिनकी आंखें ढंक गई है ऐसा वह अपने सेवकों के आंसुओं के साथ पृथ्वी पर गिर पड़ा। मंत्री-सामन्तों ने शीतल चन्दन जल में सिंचन किया और चलायमान वस्त्र के छेड़े से हवा

हुआ। अभी ऐसा पश्चात्ताप करने से क्या ? अभी तो आकाश से यह गिर कर नाश न हो जाय, इतने में उसको अधर ही पकड़ लूं।' ऐसा विचार करके उसने आकाश में स्थिर दृष्टि रखा, तब बहुत समय पीछे गिरते हुए उसको देखकर अधर से ही पकड़कर धीरे से नीचे रखा। द्वेष होने पर भी भाई के स्नेह से ऐसा किया, जिसके बल से आश्चर्य पाये हुए देवो ने उस समय बाहुबली के मस्तक पर पुष्पवृष्टि की। पीछे इस प्रकार के पराभव से लज्जित होकर भरतेश ने क्रोध से बाहुबली के छाती पर तुरंत ही मुष्टिप्रहार किया। यह प्रहार दृढ़ होने पर भी जैसे वज्र के पर घन का प्रहार निष्फल हो जाय और कृतघ्न पर किया हुआ उपकार निष्फल हो जाय, उसी प्रकार वज्रतुल्य वृत्तस्थल में वह निष्फल हुआ। पीछे जिसको कोपाग्नि प्रदीप्त हुई है ऐसा बलवान् बाहुबली ने चक्री की छाती में वज्रतुल्य मुष्टि प्रहार किया। इसके आघात से भरत को चक्कर आगया और अत्यन्त दुःखी होते हुए वह मानो समस्त विश्व चक्र पर पड़ा हो वैसे क्षणवार चारों ओर देख रहा। पीछे तत्काल बेशुद्ध हो गया और मूर्छा से जिसकी आँख ढंक गई है ऐसा वह अपने सेवकों के आँसुओं के साथ पृथ्वी पर गिर पड़ा। मंत्री-सामन्तों ने शीतल चन्दन जल से सिंचन किया और चलायमान वस्त्र के छेड़े से वे हवा

हुआ। अभी ऐसा पश्चात्ताप करने से क्या ? अभी तो आकाश से यह गिर कर नाश न हो जाय, इतने में उसको अधर ही पकड़ लूं।' ऐसा विचार करके उसने आकाश में स्थिर दृष्टि रखा, तब बहुत समय पीछे गिरते हुए उसको देखकर अधर से ही पकड़कर धीरे से नीचे रखा। द्वेष होने पर भी भाई के स्नेह से ऐसा किया. जिसके बल से आश्चर्य पाये हुए देवों ने उस समय बाहुबली के मस्तक पर पुष्पवृष्टि की। पीछे इस प्रकार के पराभव से लज्जित होकर भरतेश ने क्रोध से बाहुबली के छाती पर तुरंत ही मुष्टिप्रहार किया। यह प्रहार दृढ़ होने पर भी जैसे वज्र के पर घन का प्रहार निष्फल हो जाय और कृतघ्न पर किया हुआ उपकार निष्फल हो जाय, उसी प्रकार वज्रतुल्य हृदयस्थल में वह निष्फल हुआ। पीछे जिसको कोपाग्नि प्रदीप्त हुई है ऐसा बलवान् बाहुबली ने चक्री की छाती में वज्रतुल्य मुष्टि प्रहार किया। इसके आघात से भरत को चक्कर आगया और अत्यन्त दुःखी होते हुए वह मानो समस्त विश्व चक्र पर पड़ा हो वैसे क्षणवार चारों ओर देख रहा। पीछे तत्काल बेशुद्ध हो गया और मूर्छा से जिसकी आँख ढंक गई है ऐसा वह अपने सेवकों के आँसुओं के साथ पृथ्वी पर गिर पड़ा। मंत्री-सामन्तों ने शीतल चन्दन जल से सिंचन किया और चलायमान वस्त्र के छेड़े से वे हवा

दानुकम्पा देगा।' इस प्रकार मन मे विचार करते हुए बाहु-
बली के मस्तक पर चक्री ने क्रोधायमान होकर बिना विचार
किये ही दण्ड का प्रहार किया। इस दण्ड के आघात से
खेदित होता हुआ और क्षणवार आँखो मे चक्कर खाता हुआ
बाहुबली जानुतक पृथ्वी मे घुस गया। पीछे, क्षणवार में
स्वस्थ होकर, पृथ्वी से बाहर निकल कर और क्रोधायमान
होकर उसने भरतेश के माथे में सख्त दण्ड प्रहार किया।

फल नहीं है कि वायु से तुरन्त गिर पड़े। इतने समय आपने अपनी भुजा का वल देखा, अब हे वीर! एक वार इस चक्र का वल भी देखो।' इस प्रकार लघुवंन्धु ने कहा· तब भरत अत्यन्त कोपायमान हुआ और पूर्ण वल से अपने मस्तक पर चक्र को घुमाकर तुरंत ही बाहुवली के ऊपर छोड़ा। उस समय 'पहले के पराजय से कलुषता अब धो डाली' इस प्रकार आनन्द-पूवक भरत का सैन्य ऊंचे देख रहा और 'शक्ति आदि अस्त्रों से दुर्निवार यह चक्र क्या स्वामी के शरीर पर आता है?' इस प्रकार बाहुवली का लश्कर खेद पूर्वक देख रहा, तथा 'राज्य के लोभी चक्री ने यह अयोग्य किया।' इस प्रकार देव आकाश में हाहाकर करते हुए देख रहे। उस समय चारों ओर ज्वाला छोड़ता हुआ और अपने पास आता हुआ चक्र को देखकर बाहुवली मन में विचारने लगा कि—"क्या इनको दूर से ही मुद्गरों के प्रहार से रोक दूं। या समीप आवे तब मुष्टि के सख्त प्रहार से इसको चूर्ण कर डालूं! या समीप आते ही कबूतर के बच्चे की तरह हाथ में पकड़ लूं! या तो यह यहाँ आकर क्या करता है, यह एकवार देख लूं।" ऐसा निश्चय मन में बाहुवली विचार करता था. इतने में उसको प्रदक्षिणा देकर चक्र जैसा आया था. वैसा वापिस भरत के पास चला गया।

फल नहीं है कि वायु से तुरन्त गिर पड़े। इतने
समय आपने अपनी भुजा का बल देखा, अब हे
वीर! एक बार इस चक्र का बल भी देखो।' इस
प्रकार लघुबन्धु ने कहा. तब भरत अत्यन्त कोपायमान
हुआ और पूर्ण बल से अपने मस्तक पर चक्र को घुमाकर
तुरंत ही बाहुबली के ऊपर छोड़ा। उस समय 'पहले के
पराजय से कलुषता अब धो डाली' इस प्रकार आनन्द
पूर्वक भरत का सैन्य ऊंचे देख रहा और 'शक्ति आदि
अस्त्रों से दुर्निवार यह चक्र क्या स्वामी के शरीर पर आता
है?' इस प्रकार बाहुबली का लश्कर खेद पूर्वक देख रहा
तथा 'राज्य के लोभी चक्री ने यह अयोग्य किया।' इस
प्रकार देव आकाश में हाहाकार करते हुए देख रहे। उस
समय चारों ओर ज्वाला छोड़ता हुआ और अपने पास
आता हुआ चक्र को देखकर बाहुबली मन में विचारने
लगा कि—"क्या इसको दूर से ही मुद्गरों के प्रहार से
रोक दूं। या समीप आवे तब मुष्टि के सख्त प्रहार से
इसको चूर्ण कर डालूं! या समीप आते ही कन्दुक के जैसे
की तरह हाथ में पकड़ लूं! या तो यह यहाँ आकर क्या
करता है, यह एकवार देख लूं।" ऐसा निर्णय मन में
बाहुबली विचार करता था, इतने में उसको प्रदक्षिणा देकर
चक्र जैसा आया था, वैसा वापिस भरत के पास चला गया।

में निन्दनीय यह अविचारित कार्य को धिक्कार हो, कि जिससे पिता तुल्य बड़े भाई को मारने के लिये मै तैयार हूँ। जहॉं लोभी राजाओं से इस प्रकार बन्धुओं का भी विनाश होता है। ऐसा मलिन राज्य नरक में ले जाने वाला होता है, ऐसा शास्त्रकार ने कहा है, यह यथार्थ है। इस प्रकार बड़े भाई का विनाश करके यदि बड़ा राज्य भी मिलता हो तो दुष्कर्म का मूल रूप राज्य से मुझे कुछ भी प्रयोजन नहीं है! इसलिये लोभाभिभूत और मेरे से उपेक्षा कराया हुआ यह बेचारा चिरकाल जीवे और निष्कण्टक राज्य को भोगे। मै तो अब सब सावद्य और आरम्भ युक्त भोग का त्याग करके परमात्मा तात के पवित्र मार्ग को ही स्वीकार करूँ।"

इस प्रकार अन्नत वैराग्य के रंग से रंगित होकर आंतर शत्रुओ (कषायों) को जीतने की इच्छा वाला बाहुबली दीक्षा ग्रहण करने को तैयार हुआ और भरतेश्वर को मारने के लिये दूर से जो मुठी उपाड़ी थी, उस मुष्टि को केशों का लोच करने के लिये उसने अपने मस्तक पर ही चलाई और चिरकाल से उत्पन्न हुए सांसारिक क्लेशों का कन्दरूप अपने मस्तक और दाढ़ी मूछ के केशों को पंच मुष्टि से लोच करके, देवताओं ने जिसको सहाय दिया है ऐसा बलिष्ठ चक्रवर्ती को समस्त युद्ध में जीतने पर भी

पर भी कर्म की विचित्रता से हम दोनों में कितना अंतर पड़ा, यह तो देखो !' इस प्रकार मन में विचार करने बाद सब सामन्त और सचिव आदि के साथ भरतेश्वर उस लघुबन्धु के चरण में गिर कर, आँख में आँसू लाकर कहने लगा—'हे क्षमाधन ! अतिलोभी और दुरात्मा मैंने इस समय जो आपका अपराध किया है, वह क्षमा करो। हे बंधु ! पहले सब बंधुओं के वियोग से दुःखित हुए मुझे आपका वियोग क्षत पर क्षार जैसा दुःसह हो जायगा। इसलिये हे बंधु ! बान्धवों के वियोगाग्नि से तप्त हुए मुझे स्नेह सहित आलिंगन और आलाप रूप जल से सिंच कर शीघ्र ही शीतल करो। हे महावीर ! आप ही जिसका एक जीवन है ऐसे इन पत्नी पुत्र और सेवकों को एक वार स्नेह युक्त दृष्टि से देखो।' इत्यादि नम्र वचनों से चक्री ने बहुत वार कहा तो भी शत्रु या मित्र, सुवर्ण या लोह और स्त्री या तृण आदि में जिनकी समान दृष्टि है ऐसे तथा वांस और चन्दन में तुल्य हृदय वाले, शुभ ध्यान में आरूढ़ और नासिका के अग्र भाग पर जिसने अपनी दृष्टि रखी हुई है, ऐसे बाहुबली मुनि ने उनके सम्मुख देखा भी नहीं। पीछे समस्त संसार का संसर्ग जिसने छोड़ दिया है ऐसे महामुनि को विनय से मस्तक नमा कर भरतेश्वर आदर पूर्वक स्तुति करने

समस्त कुटुम्ब की संभाल लेते समय हिम से दग्ध हुई कमलिनी की तरह सुन्दरी को अतिकृश देख कर रसोइया को पूछा कि—'यह सुन्दरी ऐसी दुर्बल कैसे होगई ? क्या हमारे घर में भोजन की न्यूनता है ? या इसके शरीर को कोई विषम व्याधि अधिक दुःख करती है ? या तो घर में किसी ने भी माननीय सुन्दरी का अपमान किया है ?' इस प्रकार सुनकर वे कहने लगे कि—'हे देव ! इसकी दुर्बलता का कारण इनमें से एक भी नहीं है, परन्तु दीक्षा लेते समय आपने इसको रोकी थी, तब से यह संसार व्यवहार के संग से विरक्त होकर शरीर की दरकार किये बिना निरन्तर आयंबिल का तप करती है।' इस प्रकार उसकी दुर्बलता का कारण अपने को ही समझ कर, चित्त में खेदित होकर भरतेश्वर नम्रता पूर्वक सुन्दरी को कहने लगा कि—'हे शुभाशये ! उस समय चारित्र लेने की इच्छा वाली तुझे मोहान्ध मन वाले मैंने अन्तराय किया है, यह मेरा अपराध क्षमा कर। विषयों से संसार सागर में डूबते हुए मैंने तुझे भी इस प्रकार डूबाने का प्रयत्न किया, इसलिये यह मेरे अज्ञान-पन को धिक्कार हो। प्रव्रज्या की प्राप्ति के लिये अभिलाष वाली हे बहिन ! तूने ऐसा दुष्कर तप किया ! अहो ! यह कितनी मेरी [illegible] ! इसलिये अब दीक्षा ही [illegible]

को सहन करने वाले, भूमि को भेद कर बाहर निकले हुए तीक्ष्ण दर्भों से जिसके दोनों चरण विंध गये हैं, अनेक प्रकार के उपसर्ग के प्रसंग में भी पर्वत की तरह जिसका शरीर अचल है और नासिका के अग्रभाग पर जिसने अपना नेत्र युगल स्थापित किया है. ऐसा बाहुबली मुनि उन दोनों बहिनों के देखने में आया। पीछे अहंकार युक्त हृदय वाले उस बांधव मुनि को दूर से नमस्कार करके वे दोनों बहिन परिणाम में हित कारक ऐसा वचन बोलीं—'हे भ्रात ! हाथी के स्कंध पर बैठे हुए मनुष्य को उज्ज्वल केवलज्ञान कभी उत्पन्न नहीं होता. इसलिये आप गज पर से नीचे उतरो।' इतना सुनते ही अपनी बहनों का वचन समझ कर वह विचारने लगा—'इन मेरी बहन साध्वियों ने इस समय अनंभाव्य जैसा यह क्या कहा ? कारण कि बहुत समय से समस्त सावद्य योग का त्रिकरण योग से जिसने त्याग किया है और वन में तपस्या करने वाले मुझे यहां हाथी का संभव भी नहीं। परन्तु व्रत वाली इन साध्वियों की उक्ति मिथ्या भी नहीं हो सकती। इसलिये यहां तात्पर्य क्या होगा ? हां ! अब मैंने समझा है हाथी ! मान से बड़े और ज्ञानवंत लघुबंधुओं को मैं किस प्रकार वंदन करूं !" इस प्रकार के गर्व (अभिमान) रूप हाथी के

इतने में घातीकर्मों के क्षय से तुरंत ही उज्ज्वल केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ। पीछे प्रभु को प्रदक्षिणा देकर अपनी प्रतिज्ञा जिसने सफल की है ऐसे बाहुबली केवली केवल ज्ञानियों की पर्षदा में जाकर बैठे।

अब मोह निद्रा में सोते हुए भव्य जनों को चिरकाल तक प्रतिबोध देकर केवलज्ञान के प्रकाश से भास्कर समान ऐसे श्री युगादिजिनेश, बाहुबली आदि नव ९९ कुमार और आठ प्रभु के पौत्र, इस प्रकार एक सौ आठ, ये सब एक साथ ही अष्टापद पर्वत पर निर्वाण को पाये। ब्राह्मी और सुंदरी भी दुस्तर तप करके समस्त कर्मों का क्षय करके मोक्ष में गई।

जिस भरत चक्रवर्ती के दोनों चरणों के नीचे नव निधिएं संचरती हैं और देवताओं से सेवनीय चौदह रत्न जिसके घर में निवास करते हैं, जिसको छियानवे करोड़ ग्राम, छियानवे करोड़ पदाति (पैदल सेना), चौरासी लाख रथ, चौरासी लाख हाथी, चौरासी लाख घोड़े, बत्तीस हजार देश सेवा करने वाले हैं। तथा बत्तीस हजार मुकुट बंध राजा जिसकी सेवा में [illegible] हाजिर रहते हैं, चौसठ हजार भोग की भूमि रूप [illegible] रानियां हैं, [illegible], [illegible] हजार [illegible] रत्न की खान, [illegible] से [illegible] [illegible]

दिया । उस समय फाल्गुन मास में समस्त पत्ते गिर पड़े हुए वृक्ष की तरह अपने शरीर को अत्यन्त शोभा रहित देखकर भरतेश हृदय में बहुत खेद पाया। उसने विचारा कि—अहो ! विलेपनादि करने से जैसे दीवार की शोभा दीखती है, वैसे भूषणादि से ही शरीर की [illegible] शोभा दीखती है । उसको धिक्कार हो । भीतर विष्टादिक मल से व्याप्त और बाहर नव द्वारों से निकलते हुए मल से मलिन, ऐसा इस शरीर का विचार करने से कुछ भी उसमें अच्छा नहीं । यदि बाहर से कभी किसी प्रकार यह रमणीय लगे, तोभी भीतर तो यह कृमिकुल से व्याप्त वटवृक्ष के फल सदृश दुर्गन्ध से व्याप्त है । जैसे खार भूमि वर्षात के जल को दूषित करती है, वैसे यह शरीर कपूर कस्तूरी आदि चीजों को भी दूषित ही करता है । मांस, विष्टा, मूत्र, मैल, स्वेद और रोगमय इस शरीर का सेवन, यह घर की मोरी (पनाला) का सेवन जैसा है । विषयों से विरक्त होकर जिनने मोक्ष के पद [illegible] वे तत्त्वज्ञ पुरुषों ने ही इस शरीर का [illegible] समझना । तलवार में [illegible] लेने की तरह विनश्वर इस शरीर से [illegible] तो वही उत्तम है । अहो ! [illegible] मैं [illegible]

दिया। उस समय फाल्गुन मास में समस्त पत्ते गिर पड़े हुए वृक्ष की तरह अपने शरीर को अत्यन्त शोभा रहित देखकर भरतेश हृदय में वहुत खेद पाया। उसने विचारा कि—अहो ! विलेपनादि करने से जैसे दीवार की शोभा दीखती है, वैसे भूषणादि से ही शरीर की असाधारण शोभा दीखती है। उसको धिक्कार हो। भीतर विष्टादिक मल से व्याप्त और वाहर नव द्वारों से निकलते हुए मल से मलिन, ऐसा इस शरीर का विचार करने से कुछ भी उसमें अच्छा नहीं। यदि वाहर से कभी किसी प्रकार यह रमणीय लगे, तो भी भीतर तो यह कृमिगण से व्याप्त वटवृक्ष के फल सदृश दुर्गन्ध से व्याप्त है। जैसे क्षार भूमि वर्षात के जल को दूषित करती है, वैसे यह शरीर कपूर कस्तूरी आदि चीज़ों को भी दूषित ही करता है। मांस, विष्टा, मूत्र, मेल, स्वेद और रोगमय इस शरीर का सेवन, यह घर की मोरी (पनाला) का सेवन जैसा है। विषयों से विरक्त होकर जिनने मोक्ष के फलरूप तप तपे, वे तत्त्वज्ञ पुरुषों ने ही इस शरीर का फल प्राप्त किया समझना। क्षणवार में दृष्ट नष्ट ऐसी बीजली से मार्ग देख लेने की तरह विनश्वर इस शरीर से मोक्ष साधन हो सके तो वही उत्तम है। अहो ! अरघट्ट के घड़े की तरह संसार में गमनागमन करते हुए प्राणी अद्यापि निर्वेद नहीं पाते।

प्रशस्तिः—

बृहद्गच्छ में गुण श्रेष्ठ, तीव्र तप निष्ठ और श्री तप ऐसा विरुद से प्रख्यात श्री जगच्चंद्रसूरि हुए। क्रम से उनके पीछे भाग्य और सौभाग्य में अद्वितीय तपागच्छ के स्वामी श्री सोमसुन्दरसूरि हुए। उनके पाट सहस्त्राव-धानी और विस्तृत महिमा वाले युगप्रधान श्री मुनिसुन्दर सूरि हुए। उनके चरणकमल में भ्रमर समान श्री सोम-मण्डन गणि ने स्वपर के उपकार के लिये यह श्री युगादि जिन-देशना रची है। इसमें अज्ञान या अनाभोग से जो कुछ शास्त्र विरुद्ध कहने में आया हो, उसका अरिहन्त और सिद्धादि की साक्षी से मिथ्या दुष्कृत हो। परोपकार में लीन ऐसे बुद्धिमानो से यह आक्षेप पूर्वक सुधारने योग्य है। और जय तथा अभ्युदय को देने वाली यह देशना उनको वांचने योग्य है। श्री मुनिसुन्दरसूरि के पाट वर्त्तमान विजयवन्त श्री रत्नशेखरसूरि विद्यमान हैं, वे आपको मोक्षलक्ष्मी की प्राप्ति के निमित्त हो।

इति युगादि जिन देशना समाप्ता